सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

AN ANALYTICAL STUDY OF THE POEMS OF SARVESHWARDAYAL SAXENA

THESIS
SUBMITTED TO

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

BY

रश्मि कृष्णन

RESHMI KRISHNAN

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
(Professor and Dean - Faculty Of Humanities)
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

2000

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by ***Smt. Reshmi Krishnan*** under my supervision for Ph.D degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.

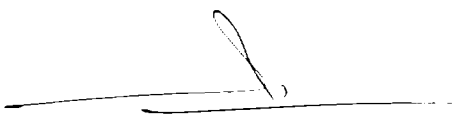

Dr.A.Aravindakshan
(Professor and Dean –Faculty of Humanities)
Supervising Teacher

DEPARTEMENT OF HINDI
Cochin University of Science And Technology
Kochi – 682 022

DATE: 30-12-2000

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of **Dr.A.Aravindakshan, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Cochin – 682 022,** and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any university.

Reshmi Krishnan

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science And Technology
Kochi – 682 022

DATE: 30-12-2000

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the ***Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology , Kochi – 682 022,*** during the tenure of fellowship awarded to me by the Cochin University of Science And Technology. I sincerely express my gratitude to the University for the help and encouragement.

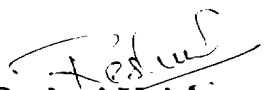

Reshmi Krishanan

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science And Technology
Kochi – 682 022

DATE: 30-12-2000

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय - एक 1 - 45

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - व्यक्ति और रचनाकार

हिन्दी कविता का आधुनिक परिदृश्य और सर्वेश्वर का पदार्पण-सर्वेश्वर की कविता संबंधी मान्यताएँ

नाटक साहित्य:-(1) लडाई - वस्तु विन्यास, पात्र परिकल्पना (2) बकरी - वस्तुविन्यास, पात्र परिकल्पना- (3) अब गरीबी हटाओ - वस्तु विन्यास, पात्र परिकल्पना ।

एकांकियाँ :- (1) हवालात (2) हिसाब किताब

बाल नाटक

कथा साहित्य :- कहानी

उपन्यास - सोया हुआ जल

पागल कुत्तों का मसीहा

उडे हुए रंग (सूने चौखटे)

सर्वेश्वर की टिप्पणियाँ - पत्रिका संपादन ।

अध्याय - दो 46 - 84

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता में लोकमानस के भिन्नार्थी- संदर्भ

प्रकृति का लोकपक्ष और कविता - नयी कविता में प्रकृति - प्रकृति की सहजता - प्रकृति का प्रतीकन - सर्वेश्वर की कविताओं में लोक परिदृश्य - लोक संकेतों में निहित मानवीय पक्ष ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय -तीन 85 - 129

सामाजिक यथार्थ का सन्निवेश और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की जनवादी कविताओं का विश्लेषण

कविता की जनवादी धारा - प्रगतिवाद - प्रयोगवाद - नई कविता - नई कविता का सामाजिक यथार्थ - व्यक्ति सत्य और सामाजिक सत्य तथा विद्रोह का व्यक्ति स्तर और सामाजिक स्तर - नयी कविता का जनवादी परिप्रेक्ष्य- सर्वेश्वर की जनवादी कविताएँ - गरीबी और शोषण - संत्रस्त जीवन - सामाजिक सच्चाई की जटिलताएँ - स्वतंत्रता की संकल्पना - व्यवस्था विरोध - क्रांति चेतना का आह्वान - कवि की आस्था ।

अध्याय - चार 130 - 176

राजनीतिक विसंगति के व्यापक संदर्भ में सर्वेश्वर की कविताओं का विश्लेषण

कविता और राजनीति - नयी कविता में राजनीति - सर्वेश्वर की कविता में राजनीतिक यथार्थ - सत्ता की विध्वंसात्मक प्रवृत्ति - आम आदमी:- राजनीतिक अमानवीयता का शिकार - क्रांति की चेतना - चिनगारी की प्रतीक्षा : आस्था का स्वर ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय - पाँच 177 - 218

सर्वेश्वर का कविता-शिल्प

आधुनिक कविता में शिल्प - काव्य रूप : काव्य नाटक - लघु कविता - लंबी कविता - गद्य कविता - नवगीत - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की शिल्प संबंधी मान्यताएँ - सर्वेश्वर की कविता में लोकधर्मिता - सर्वेश्वर की काव्य भाषा - प्रतीकों व बिम्बों का बृहत्तर संसार और जनजीवन की अभिव्यक्ति ।

उपसंहार 219 - 228

संदर्भ ग्रन्थ सूची 229 - 244

भूमिका

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग हर दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस युग में प्रत्येक साहित्यिक विधा का समग्र विकास हुआ । इस दौर में कविता का जो विकास हुआ वह इतिहास का वस्तु सत्य है । कविता निरन्तर गतिशील दृष्टि का परिचय इसलिए देती रही क्योंकि यह युग कविता में आधुनिकता का युग रहा ।

भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावाद के प्रौढ गंभीर साहित्यकारों ने अपनी सर्जनाशक्ति के द्वारा हिन्दी साहित्य को खासकर हिन्दी कविता को एक नया आयाम प्रदान किया । परिणामत: कविता के रूप और भाव परिवर्तित हुए । आधुनिक युग के कवि परिवर्तन की गहराई को समझने में समर्थ थे और वे अपनी कविताओं को जीवन की जटिल अवस्थाओं को अभिव्यंजित करने का प्रखर माध्यम बनाया । आधुनिक हिन्दी कवियों के ऐसे सशक्त कवियों की पंक्ति में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नात आता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन पर केन्द्रित है । प्रयोगशील कविता से नयी कविता और नयी कविता से प्रतिबद्ध कविता की ओर प्रस्थान करते हुए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपनी अलग पहचान बनायी है । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य की नयी रचनात्मक गहराइयों से गुज़रते हुए उनके संघर्ष और आत्मसंघर्ष का विश्लेषण इस शोध प्रबन्ध का अभीष्ट है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना हिन्दी के जनवादी चेतना के पक्षधर साहित्यकार हैं । समाज की विडम्बनाओं एवं राजनीतिक अनैतिकताओं का खुला चित्रण और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में मिलता है । इतना ही नहीं कि इन विडम्बनाओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया प्रखर रही है । उनकी कविता दृष्टि में निहित प्रखरता का विशेष अध्ययन इसलिए ज़रूरी है कि यह हमारे सामाजिक इतिहास का अभिन्न अंग है । कविता को कविता की शर्त पर रचते हुए उसमें व्यापक रचनाभूमि को सम्मिलित करनेवाले सर्वेश्वर की कविता शोधार्थी के लिए एक चुनौती है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पाँच अध्याय हैं । पहला अध्याय "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - व्यक्ति और रचनाकार" शीर्षक से है । जब किसी विशेष लेखक पर शोध कार्य किया जाता है तब उसकी रचनाधर्मिता के साथ ही साथ उनके व्यक्तित्व को भी निकट से पहचानना आवश्यक हो जाता है क्योंकि एक प्रासंगिक रचनाकार का व्यक्तित्व बहुमुखी होता है जिसका प्रतिफलन उनकी रचनाओं में अनुभव किया जा सकता हैं । इस अध्याय में आधुनिक कविता में सर्वेश्वर का पदार्पण, उनकी कविता संबंधी मान्यताएँ, कहानी, उपन्यास, नाटक, पत्रिका-संपादन आदि के क्षेत्र में उनका योगदान और उनके रचना व्यक्तित्व की विशिष्टताओं पर विचार किया गया है । सर्वेश्वर का रचना-संसार कितना विशाल है और उनकी संवेदनाएँ कितनी तीखी हैं, इसका परिचय पहले अध्याय से प्राप्त होता है । प्रस्तुत अध्याय सर्वेश्वर के रचना व्यक्तित्व की सजगता को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखा गया है ।

दूसरा अध्याय है "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता की रचनाभूमि में लोकमानस के भिन्नार्थी संदर्भ ।" साहित्य के हर युग में "प्रकृति" कवियों के लिए आकर्षण की वस्तु रही है । शुरू में प्रकृति के माध्यम से मानवीय भावनाओं का चित्रण होता था तो आज का कवि "समकालीन मानवीय संवेदना" के संदर्भ में प्रकृति का अनुभव करता है । "लोकमानस" से युक्त कविता वस्तुत: समकालीन कविता का अटूट पक्ष है । सर्वेश्वर की कविताओं में "लोकमानस" एक विशिष्ट रूप में आता है । जब कवि पूरी तरह से अपनी मिट्टी से जुडता है तब लोकमानस कवि में विवृत होता है । आज का कवि समसामयिकता का दबाव और जनजीवन से लगाव आदि को ग्राम्य प्रकरण में गूँथकर प्रस्तुत करता है । इस अध्याय में सर्वेश्वर की प्रकृति दृष्टि में निहित लोकचेतना को रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है ।

तीसरा अध्याय है "सामाजिक यथार्थ का सन्निवेश और सर्वेश्वर की जनवादी कविताओं का विश्लेषण ।" सर्वेश्वर जनकविता के पक्षधर हैं । इसलिए आम आदमी की लडाई को सर्वेश्वर प्रमुखता देते हैं । अत: सर्वेश्वर की चर्चा जनवादी कवि के रूप में की जाती है । सर्वेश्वर की काव्य यात्रा नई कविता से शुरू होकर समकालीन दौर की जनवादी कविता तक फैली है इसलिए उनकी जनवादी कविताओं का विशद अध्ययन ज़रूरी है । व्यवस्था की वर्तमान अव्यवस्था से आतंकित सामाजिक मनोभूमि में विद्यमान वास्तविकता को या उसकी अव्यवस्था को विद्रोह और क्रांति के प्रकरण में सर्वेश्वर ने आंका है, जिसका यथासंभव विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है ।

"राजनीतिक विसंगति के व्यापक संदर्भ में सर्वेश्वर की कविताओं का विश्लेषण" चौथा अध्याय है । 1970 के आसपास और बाद

में लिखी गयी उनकी कविताओं में राजनीतिक प्रसंग खुलकर आया है । देश और समाज की राजनीतिक स्थितियों में जो स्पष्ट बदलाव आया है उसे जनवादी कवि कभी नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकते हैं । राजनीति जब कविता का विषय बनती है तब उसके कई रूप कविता में अवतरित होते हैं । हमारी तमाम प्रकार की नागरिक अवबोध जन्य पहचान के बावजूद आज की व्यवस्था में निहित मनुष्य विरोधी स्थितियाँ सबसे बड़ा यथार्थ है जिसका पर्दाफाश सर्वेश्वर की कविताओं में है । इस अध्याय में यही देखा गया है कि राजनीति के इस परिप्रेक्ष्य को किस प्रकार की अभिव्यक्ति सर्वेश्वर की रचनाओं में हुई है । यह अपने आप में एक गंभीर विषय है जिसको यथासंभव मात्रा में विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय है "सर्वेश्वर की कविता का शिल्प" । प्रत्येक युग में कविता द्वारा स्वीकृत विषय के अनुरूप शिल्प भी स्वीकृत होता है । विषय की विविधता, गहनता, आन्तरिक दिशाबोध के अनुरूप इसके बाह्य पक्ष को बदलना पडता है । नई कविता के दौर में काव्य भाषा में भी परिवर्तन आया । प्रतीकों का बृहत्तर प्रयोग, फैन्टसी के द्वारा नए कवियों ने काव्य भाषा को नया रूप प्रदान किया । सर्वेश्वर की काव्यभाषा भी इससे भिन्न नहीं है । नए नए प्रतीक, प्रयोग आदि का प्रयोग करके काव्य-भाषा को सर्वेश्वर ने एक नया आयाम प्रदान किया है । जीवन की जटिलताओं को आत्मसात करने की अदम्य इच्छा के कारण कविता का आन्तरिक दिशाबोध इतना प्रखर बन गया कि कविता का शिल्पपक्ष स्वयमेव बदलने लगा । यह बदलाव सर्वेश्वर की कविताओं में भी दर्शनीय है । इस अध्याय में शिल्पगत परिवर्तन के वस्तुपक्ष पर प्रभाव को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं की प्रासंगिकता पर उपसंहार में विचार किया गया है । उनकी कविताएँ क्यों प्रासंगिक है, भारतीय परिप्रेक्ष्य में उनकी कविताओं का क्या स्थान हो सकता है, जनचेतना को प्रखर बनाने में कहाँ तक वे सक्षम हैं इन सभी बातों पर विचार किया गया है । समकालीन कविता की बदलते परिवेश को अच्छी तरह आँकने के कारण सर्वेश्वर समकालीन संवेदना के कवि भी बन गए हैं । समकालीन कविता में उनकी सार्थक भूमिका को उपसंहार में रेखांकित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध कार्य कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के श्रद्धेय प्रोफेसर डा.ए.अरविन्दाक्षन जी के विद्वतापूर्ण निर्देशन में संपन्न हुआ है । उनके पांडित्यपूर्ण निर्देशों तथा सुझावों ने मुझे काफी प्रेरित किया है । उनके प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगी ।

इस विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डा.पी.ए.षमीम अलियार इस शोध कार्य में मुझे प्रोत्साहन देती रहीं । मैं ने उनकी सहृदयता का लाभ उठाया है । उनके प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इसी विभाग के प्रोफेसर डा.एन.मोहनन और प्रोफेसर एम.षण्मुखन के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इस विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ कि इस शोध कार्य में वे मुझे निरन्तर प्रोत्साहन देते रहे हैं ।

कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालय अधिकारियों एवं विश्वविद्यालय पुस्तकालय अधिकारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ । हिन्दी विभाग के कार्यालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

मेरे मित्र, जो शोध छात्र हैं, उनकी सहायता और प्रेम ने मुझे हमेशा प्रोत्साहन दिया है । उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इस शोध प्रबन्ध के तैयारी के सिलसिले में मैं ने जिन ग्रन्थों का उपयोग किया है उनके लेखकों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ ।

अंत में बडी विनम्रता के साथ यह शोध प्रबन्ध सहृदय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ । सुधी जन जानते हैं कि कोई भी अध्ययन अपने आप में पूर्ण नहीं हैं । फिर भी मेरा प्रयत्न यही रहा कि यह स्तरीयता और पूर्णता प्राप्त [illegible] कर सके ।

सविनय,

हिन्दी विभाग रश्मि कृष्णन
विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोचिन
कोच्चि - 682022

30. 12. 2000.

अध्याय : एक

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - व्यक्ति और रचनाकार

हिन्दी कविता का आधुनिक परिदृश्य और सर्वेश्वर का पदार्पण

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग हर दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस युग में प्रत्येक साहित्यिक विधा का समग्र विकास हुआ । इस दौर में विशेष रूप से कविता का प्रचुर विकास हुआ जो कि अब इतिहास का वस्तु-सत्य है । कविता में यह आधुनिकता का भी युग रहा । इसलिए कविता निरंतर गतिशील दृष्टि का परिचय देती रही । एक ओर हिन्दी कविता अपनी देशज अस्मिता का भली-भाँति परिचय देती रही तो दूसरी तरफ भारतीय कविता के साथ अपनी सरोकार भी सुदृढ करती रही है । कविता का आन्तरिक एवं बाह्य विकास इस दौर की कविता का प्रीतिप्रद पक्ष है ।

भारतेन्दु युंगीन साहित्य में आधुनिकता का प्रथम संस्पर्श अनुभव होता है । इस युग ने वस्तुतः साहित्य के आगामी युग की नींव रखी थी । मोटे तौर पर इस काल के कवि व्यक्ति स्वातंत्र्य और राष्ट्रीय भावना के समर्थक थे । इस युग के कवि नयी युग चेतना से प्रभावित थे । उन्होंने परंपरा, धर्म आदि में निहित रूढियों को तोड़ने का कार्य किया और उन्होंने नयी परंपरा की नींव रखी । इतने पर भी भारतेन्दु युगीन कविता संक्रांति काल की कविता होने के कारण उस में जहाँ नवीनता का मोह हैं, वहाँ उनमें प्राचीनता के प्रति आग्रह भी है । लेकिन यह द्वन्द्व व्यापक नहीं है । उनकी विषय वस्तु सुधारवादी आन्दोलन से प्रेरित ही रही है । इसलिए देशप्रेम, सामाजिक सद्भाव और राष्ट्रीय दृष्टि की प्रमुखता रही है । उन्होंने जीवन यथार्थ और काव्य के बीच निकटतम संबंध स्थापित करके तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना को वाणी प्रदान की हैं । इस युग में ही हिन्दी कविता की नवीन धारा का जन्म हुआ ।

द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना है, खड़ीबोली को गद्यभाषा तथा काव्यभाषा दोनों के रूप में प्रतिष्ठा-प्राप्ति । द्विवेदीयुगीन कवियों और आचार्यों के प्रयास से खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में अर्हता प्राप्त हुई जिसकी पृष्ठभूमि में आधुनिक दृष्टि भी विद्यमान है । भारतेन्दु युग की तुलना में द्विवेदीयुग की देशभक्ति संबंधी कविता अतीत से वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, अविश्वास से विश्वास, उपदेश से कर्म और आत्महीनता से आत्मगौरव की ओर अग्रसर है । उपेक्षित पात्रों को लेकर कविताएँ लिखने की प्रवृत्ति इस युग में प्रमुख रही है । मैथिलीशरण गुप्त का "साकेत", हरिऔध का "प्रियप्रवास" आदि इसके दृष्टान्त है । द्विवेदीयुग की कविता का आस्वादन पूरी तरह से नव जागरणकालीन प्रवृत्तियों के तहत ही संभव है । नवजागरण का व्यापक भारतीय प्रसंग हिन्दी कविता की विषयवस्तु के रूप में स्वीकृत हुआ, यह साधारण बात नहीं है । हिन्दी कविता हिन्दी प्रदेश के साथ ही नहीं पूरे भारतीय परिदृश्य में प्रतिष्ठित हो रही थी ।

छायावाद आधुनिक कविता की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है । उसने आधुनिक हिन्दी काव्य परंपरा को कल्पना एवं रूमानियत का एक नया रूप देकर संवारा । द्विवेदीयुग में नैतिक, इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक कविताओं की भरमार थी । छायावाद ने द्विवेदीयुगीन नैतिकता को अलौकिक सौंदर्यचेतना में मंडित किया । उपदेशात्मकता के स्थान पर भावोच्छ्वसित उद्गार व्यक्त किये गये और स्थूल इतिवृत्तात्मकता का तिरस्कार कर भावात्मकता की अभिव्यक्ति को प्रश्रय दिया गया । वास्तव में आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में छायावाद का आविर्भाव एक आकस्मिक घटना नहीं है । अपने युग की माँग और अपने पूर्ववर्ती युग की परिस्थितियों से प्रेरणा पाकर ही कविता की एक स्वतंत्र प्रवृत्ति के रूप में छायावाद का उदय और विकास हुआ । अतः छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक न होकर रचनात्मक है ।

छायावादी कवि को अपने व्यक्तित्व के प्रति अगाध विश्वास था और उसने बड़े वैभव के साथ काव्य के भाव और कलापक्ष में निज व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया है । अत: अहंभावना छायावादी काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता बन गयी और इस प्रकार छायावादी काव्य में वैयक्तिक सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति खुलकर हुई । जयशंकर प्रसाद का "आँसू" पन्त के "उच्छ्वास" व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुन्दर निदर्शन है ।

छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रों में खूब रमा है । इस काव्य ने प्रकृति पर चेतनता का आरोप या प्रकृति का मानवीकरण किया है । प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि छायावाद के प्रमुख कवियों ने प्रकृति-सौंदर्य का प्रचुर अंकन कविताओं में किया । जैसे प्रसाद ने लिखा -

जब कामना सिन्धु तट आयी ले संध्या का तारा दीप
फाड सुनहली साड़ी उसकी तू हँसती क्यों अरी प्रतीप ?
इस अनन्त काले शासन का वह जब उच्छृंखल इतिहास
आँसू औ तम घोल लिख रही तू सहसा करती मृदु हास ।[1]

नारी सौंदर्य का चित्रण भी छायावादी कवियों ने सूक्ष्मता एवं श्लीलता के साथ किया है । नारी सौंदर्य में इन्द्रियानुभूतियों को भी प्रचुरता मिली है । नारी सौंदर्य वस्तुत: छायावादी कविता की सौंदर्य दृष्टि के मानक प्रतिफलन है । छायावाद में बाह्य पदार्थों की अपेक्षा आंतरिकता की प्रवृत्ति अधिक होती है । यह आन्तरिक प्रवृत्ति कवि को रहस्यवाद की ओर अग्रसर करती है । छायावादी कवियों ने आंतरिक अनुभूतियों के प्रस्फुटन के लिए रहस्यवादी भावना को अभिव्यक्ति दी है । रहस्यवाद को अलग

---

1. प्रसाद - कामायनी - आशा सर्ग - पृ. 18 - प्र. 1988

काव्य प्रवृत्ति के रूप में भी देखा जाता है । लेकिन वह छायावाद की अवान्तर प्रवृत्ति है, जिसमें जीवन की आध्यात्मिकता की खोज भी विद्यमान है ।

छायावादी काव्य में वेदना की विवृति हुई है । यह कहीं पर अनन्त वेदना के रूप में हैं तो कहीं पर करुणा में और कहीं-कहीं निराशा के रूप में है । वेदना का यह भाव भी रहस्यवादी प्रवृत्ति का ही एक रूप है । यह भाव अधिक मात्रा में महादेवी में प्रकट होता है ।

अनुसरण विश्वास मेरे
कर रहे किसका निरन्तर
घुमने पदचिह्न किसके
लौटते यह श्वास फिर फिर
कौन बन्दी कर मुझे अब
बँध गया अपनी विजय में
कौन तुम मेरे हृदय में ।[1]

छायावादी कविता अपनी सौंदर्याभिव्यक्ति के शिखर पर थी । छायावाद ने मनुष्य को भावों और मूल्यों को प्रधानता भी दी । छायावाद के इस शिखर काल में विश्वेश्वरदयाल सक्सेना और श्रीमती सौभाग्यवती सक्सेना के पुत्र के रूप में सन् 1927 में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के पिकोरा में हुआ । ग्रामीण वातावरण ने उसके बचपन को समृद्ध किया है । ग्रामीण संस्कृति में पलने के कारण उनके काव्यात्मक दृष्टिकोण धीरे धीरे विकसित होने लगा । सर्वेश्वर ने लिखा -"कस्बेनुमा छोटे से शहर के बाहर चारों तरफ दूर तक फैले खेतों, तालों और छोटे छोटे

---

1. महादेवी वर्मा - सन्धिनी - पृ. 77 - प्र. 1993

गाँवों के बीच बचपन बीता जिसमें खेतों की मेड़ों, घर के आसपास अनाथाश्रम के बच्चों के अलावा आर्थिक संघर्ष से उत्पन्न पारिवारिक कलह भी बचपन के साथी रहे ।[1] इससे स्पष्ट होता है कि उनके जीवन के आरंभकाल से लेकर सर्वेश्वर ने संघर्ष को झेला है । अतः संघर्ष उनके लिए स्वानुभव है ।

सर्वेश्वर की प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई । उन्होंने 1942 में ऐंग्लो संस्कृत हाईस्कूल बस्ती से मेट्रिक तल की पढाई पूरी की । बचपन से ही सर्वेश्वर साहित्य में रुचि रखते थे ।

सन 1943 में "तारसप्तक" का प्रकाशन हुआ । सप्तकीय कवियों ने कविता में नए प्रयोग पर बल दिया है । इस "प्रयोग" के पूर्व "प्रगति" का एक दौर भी हिन्दी कविता में रहा जिसकी नींव खुद छायावाद ने डाली थी । निराला की "कुकुरमुत्ता" जैसी कविताओं ने हिन्दी कविताओं में एक नया पन्थ निर्मित किया है ।

सर्वेश्वर ने इस समय कविता लिखना शुरू किया था । इसलिए अपने समकालीन कवियों एवं तत्कालीन काव्य-अवधारणा से वे भली-भाँति परिचित थे । उन्होंने प्रगति और प्रयोग के अंतरूनी परतों की छानबीन करके उनके नींवादार मूल्यों को स्वीकार किया है । इतना ही नहीं उन मूल्यों ने उनकी काव्य यात्रा को नई दिशा प्रदान की ।

प्रगति और प्रयोग की विकासयात्रा के समान्तर सर्वेश्वर की रचनात्मकता का क्रमिक विकास भी हो रहा था । 1944 में इंटरमीडियट,

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - तीसरा सप्तक - वक्तव्य - पृ. 206 - प्र. 1959

1946 में बी.ए. तथा 1949 में प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से एम.ए. पास किया । इसी बीच 1947 में आनन्दी देवी (विमला) से उनकी शादी हुई । राममनोहर लोहिया के समाजवादी विचारधारा से आकृष्ट होकर समाज में व्याप्त गैर-बराबरी के विरुद्ध आवाज़ उठाने का प्रयास सर्वेश्वर ने शुरू किया । विजयदेव नारायण साही से मित्रता मार्क्सवाद की प्रशंसा तथा ढोंगी मार्क्सवादी लोगों की आलोचना आदि इस दौर के प्रमुख कार्य कलाप है ।

सिद्धांतवादी पिता यद्यपि सर्वेश्वर को एक बड़े अफ़सर के रूप में देखना चाहते थे लेकिन सर्वेश्वर एक कवि बनना पसन्द करते थे । कवि-कर्म उनके पिता के लिए आवारा-गर्दी के बराबर था । लेकिन यह धारणा सर्वेश्वर के रचना कर्म को रोक नहीं सकी ।

एम.ए. करने के बाद 1949 में सर्वेश्वर ने महालेखाधिकारी के कार्यालय में उच्च श्रेणी लिपिक के पद पर कार्य शुरू किया । 1955 तक वे इसी पद पर बने रहे । 1951 में उन्हें प्रथम पुत्र ईश्वर की प्राप्ति हुई लेकिन 1954 में उनकी मृत्यु हो गयी । 1955 के बाद वे आकाशवाणी दिल्ली में हिन्दी अनुवादक बन गए ।

सर्वेश्वर के काव्य जीवन का प्रारंभ व्यवस्थित रूप से 1949 से होता है । पहले पहल सर्वेश्वर का सृजन कार्य कहानियों के माध्यम से सामने आया और 1950 से वे पूर्ण रूप से कविता की ओर उन्मुख हुए ।

इलाहाबाद की परिमल गोष्ठी में सर्वेश्वर भी शामिल हुए । कुछ ही समय में वह परिमल के संयोजक भी हो गए । वास्तव में उनकी रचनाधारा का स्रोत भी परिमल में फूटा ।

अपनी प्रकाशित पहली कविता के बारे में सर्वेश्वर बताते हैं -"बचपन में आर्यमित्र नामक एक ही पत्र था जो नियमित रूप से आता था । यह पत्र लखनऊ से प्रकाशित होता था । इसी आर्यमित्र में हम दोनों एक दूसरे के लिए कविता के उत्तर में कविता लिखने लगे । सबसे पहली कविता संभवत: 1940 या 1941 में प्रकाशित हुई । उन कविताओं की तर्ज बच्चन के गीतों की थी - इस निराशा के गगन में कौन गीत सुना रहा था ...."[1]

अज्ञेय के साथ की मुलाकात ने सर्वेश्वर की काव्ययात्रा में एक नया मोड उपस्थित किया । उन्होंने सर्वेश्वर की कविताओं को "प्रतीक" में प्रकाशित किया ।"दो अगर की बत्तियाँ", "सरकंडे की गाडी" आदि को उन्होंने "प्रतीक" में छापा । सर्वेश्वर कहते हैं - "फिर वात्स्यायनजी ने ही "नई कविता" के पहले या दूसरे अंक में मेरी कविताओं का विस्तृत परिचय लिखा और एक साथ कई कविताएँ भी "नई कविता" में प्रकाशित हुई ।"[2] इस प्रकार सर्वेश्वर के रचनाकार के निर्माण में अज्ञेय की भूमिका महत्वपूर्ण है ।

"दूसरा सप्तक" के प्रकाशन के बाद नयी कविता स्वीकृत हो जाती है । प्रयोगशील नई कविता के साथ कविता की यह ऊर्द्धगामी प्रगति भी थी । प्रगतिवादी कविता और प्रयोगवादी कविताओं की स्थूल एवं सूक्ष्म अतिरंजनाओं से मुक्त होकर हिन्दी कविता अपनी ज़मीन तलाश रही थी और हिन्दी की नई कविता ने मानवीय संसक्तियों को कविता के अंतर्तत्व के रूप में ग्रहण करके आन्तरिक एवं बाह्य घटकों का ऐसा विकास किया कि कविता के सरोकार बहुआयामी संदर्भों से जुडने लगे । इसी दौर में याने

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - आजकल - सितंबर 1980 - पृ. 10
2. वही - पृ. 11

सन् 1959 में अज्ञेय ने पुनः "तीसरा सप्तक" संपादित किया जिसमें सर्वेश्वर की कविताओं को उन्होंने शामिल किया ।

सर्वेश्वर की कलम अपने में एक मुहावरा है, जिस मुहावरे को पाकर पाठक का चुप रह जाना असंभव था । इस कला के रंग में आकर अज्ञेय ने "काठ की घंटियों" का संपादन 1959 में किया । इस प्रथम संग्रह की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है -"अपनी सामाजिक दृष्टि और अपनी रचनाओं में स्पन्दनशील गहरी सामाजिक चेतना के बावजूद सर्वेश्वर को सर्वप्रथम अनुभव से प्रयोजन है ।"[1]

सर्वेश्वर का पारिवारिक जीवन सुखद रहा । 1957 में पहली पुत्री विभा का और 1962 में द्वितीय पुत्री शुभा का जन्म हुआ । 1960 से वे आकाशवाणी लखनऊ में सहायक निदेशक के रूप में नियुक्त हुए ।

सर्वेश्वर का दूसरा काव्य संकलन "बाँस का पुल" 1963 में प्रकाशित हुआ । सर्वेश्वर की आरंभिक कविताओं में अनुभव का उद्वेग, गीतात्मकता, लोक संस्कृति से जुडाव, विद्रुपता, रोमाँटिक अनुभव का ताप आदि मौजूद हैं । 1964 में उनका तबादला भोपाल में फिर भोपाल से इन्दोर में हुआ । अंत में उसी वर्ष अगस्त में वे "दिनमान" के उपसंपादक नियुक्त हुए ।

---

1. अज्ञेय - काठ की घंटियाँ - भूमिका - पृ. 7 - प्र. 1959

1966 में उनका "एक सूनी नाव" शीर्षक संकलन का प्रकाशन हुआ । इस संकलन में प्रेम और प्रकृति संबंधी कविताएँ हैं । कुछ रचनाएँ व्यंग्यात्मक भी हैं । इसमें लोकतांत्रिक ढाँचे की सत्ताभिमुख राजनीति और उसके अन्तर्विरोधों ने जो रूप दे रखा है उसके प्रति तीखा व्यंग्य है और भीतर ही भीतर कुरेदनेवाली भाषा भी इसमें अपनायी गयी है । अर्थात समकालीन कविता की नब्ज पकड़ने में सर्वेश्वर उसी दौर में सक्षम निकले । उनकी यह कविता इसका अच्छा उदाहरण है -

लोकतंत्र को जूते की तरह
लाठी में लटकाए
भागे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाए ।"[1]

4 जुलाई 1966 को सर्वेश्वर की पत्नी विमला का देहांत हुआ । इस दुर्घटना ने सर्वेश्वर को आहत किया । इस अकेलेपन की व्यथा 1969 में प्रकाशित "गर्म हवाएँ" नामक संकलन की "पत्नी की मृत्यु" में अंकित है । उसमें उन्होंने लिखा -

बायें हाथ में ले
अपना कटा हुआ दाहिना हाथ
बैठा हूँ मैं घर के उस कोने में
जिसे तुम्हारी मौत
कितनी सफाई से खाली कर गयी है ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 83 - पृ. 1978
2. वही - पृ. 125 (पत्नी की मृत्यु पर)

सर्वेश्वर की आरंभिक कविताओं में हताशा थी ।

अक्सर एक हँसी / ठंडी हवा सी चलती है
अक्सर एक दृष्टि / कनटोप सा लगाती है,
अक्सर एक बात / पर्वत सी खड़ी होती है,
अक्सर एक खामोशी / मुझे कपड़े पहनाती है ।
मैं जहाँ होता हूँ / वहाँ से चल पड़ता हूँ
अक्सर एक व्यथा / यात्रा बन जाती है ।[1]

लेकिन इस हताशा में भी कवि के मन में एक आस्था का भाव है । अपनी शक्ति का एहसास कवि को है इसीलिए वे कहते हैं -

शायद कल
मेरी आत्मा का निष्प्राण देवता
अपने चक्षु खोल दें ।
शायद कल
हर गली अपना घुटता धुआँ
मेरी ओर रोल दे ।
शायद कल
मेरे गूँगे स्वरों के सहारे
कोटि कोटि कंठों की खोयी शक्ति बोल दे ।[2]

और कवि सारे दर्द को समेटकर बजने के लिए काठ की घंटियों को आह्वान करते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का मोहभंग समाज में व्याप्त अमानवीयता, भ्रष्टाचार, राजनीतिक दाव-पेंच आदि ने सर्वेश्वर के कवि मन को आन्दोलित

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - प्रतिनिधि कविताएँ - सं.प्रयाग शुक्ल - पृ. 16 - प्र. 1984.

2. वही - पृ. 23 - प्र. 1981.

किया और उनका विद्रोही मन शनैः शनैः बाहर आती दिखाई देने लगा ।

सुनो
ढोल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे धीरे एक क्रांतियात्रा
शवयात्रा में बदल रही है ।[1]

1967 से लेकर वे "दिनमान" के मुख्य उपसंपादक बने । इसी दौर में उनकी चेतनाशक्ति में एक नया जोश आया । सामाजिक विसंगतियों से सीधे साक्षात्कार होता गया और इसने उनके कवि-व्यक्तित्व को अधिक प्रखर बनाया ।

1973 में "कुआनो नदी" 1977 में "जंगल का दर्द" और 1982 में "खूँटियों पर टँगे लोग" जैसे संकलनों का प्रकाशन हुआ । जब "खूँटियों पर टंगे लोग" का प्रकाशन हुआ तब वे "पराग" के संपादक थे । "क्या कहकर पुकारूँ" नामक एक संग्रह भी है लेकिन अप्रकाशित रह गया है ।

इन कविता संकलनों में सर्वेश्वर का व्यक्तित्व एकदम प्रखर और प्रतिबद्ध है । मार्क्सवादी दृष्टि इनकी कविताओं की अन्तर्दृष्टि है । मार्क्सवाद ने उनकी समझ को, कवि-दृष्टि को इस हद तक विकसित किया कि वे सामाजिक अन्तर्विरोध को बखूबी समझने लगे थे । देशीय एवं अन्तर्देशीय समस्याओं के तहत भारतीय समाज की वास्तविकताओं को देखने-परखने की क्षमता भी उन्हें मार्क्सवादी दृष्टि से ही मिली है । इसका यह

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 90 - प्र. 1978

मतलब नहीं है कि उनकी कविताओं में मार्क्सवाद हावी रहा है । कविता को कविता की शर्त पर वे लेते थे जिसके मूल में उनकी व्यापक अनुभव-संपदाएँ हैं । इस कारण से उनकी कविता जो आगे चलकर समकालीन कविता में परिणत हुई, दिशा देने में सर्वेश्वर की सर्वोच्च भूमिका रही है । यथार्थ के बहुआयामी संदर्भों को अपनी वैकल्पिक पक्षधरता और रचनाशीलता के सामंजस्य के साथ प्रस्तुत करने के कारण ही सर्वेश्वर समकालीन दौर में प्रासंगिक कवि हो गए हैं ।

सर्वेश्वर की कविता संबंधी मान्यताएँ

रचनाकार की रचनाशीलता पर समय, समाज आदि अपना प्रभाव छोडते हैं । इस दृष्टि से साहित्यकार की रचनात्मक भूमिका का महत्व सर्वाधिक है । वह समय से केवल साक्षात्कार ही नहीं करता, बल्कि उससे प्रतिकृत भी होता है । जीवन यथार्थ को उसकी समग्रता में अनुभव करना और उसको अभिव्यक्ति देना कवि अपना कर्म व धर्म मानता है । वह उसका साक्ष्य है, विलोम भी, स्वीकृति है पर निषेध भी ।

प्रत्येक कवि की कविता संबंधी मान्यताओं पर विचार करना इसलिए संगत है कि कविता और कविता संबंधी मान्यताओं को आमने-सामने रखकर देखा जाएँ तो कवि व्यक्तित्व के कुछ अनछुए पक्ष सामने आते हैं । सर्वेश्वर भी समय-समय पर अपनी रचना संबंधी मान्यताएँ व्यक्त की हैं जिनका विश्लेषण उनकी कविता के नज़दीक में जाने के लिए सहायक है ।

जीवन की गहनतम अनुभूतियों को सर्वेश्वर अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति देते हैं । उनकी कविताओं में परिवेश से गहरा संबंध स्थापित करनेवाली तीखी प्रतिक्रियाशीलता है । इसलिए निस्संकोच हम यह कह सकते हैं कि सर्वेश्वर वह प्रथम कवि है जिन्होंने निराला और मुक्तिबोध की तरह के जीवन के नज़दीक आने की कोशिश की । उन्हें यथार्थवादी इसलिए कहा जा सकता है । सर्वेश्वर ने लिखा है -"मेरे तीन सबसे बडे साथी हैं - विपत्ति, संघर्ष और निराशा । बचपन से रहे हैं और जैसे मेरा ढर्रा है आगे भी रह सकते हैं । इनसे एक बात मैं ने सीखी है खरी बात कहने में सबसे आगे रहना । अपने साहित्य के माध्यम से भी मैं खरी बात कहना चाहता हूँ । क्या कविता, क्या कहानी सब में अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य मेरा सबसे बडा साथी है ।"[1]

सर्वेश्वर ने स्वीकार किया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की मनस्थिति की अभिव्यक्ति उनकी सृजनचेतना में विद्यमान रही है । इसलिए वे कल्पना करते हैं कि "समाज में समानता हो, शोषण और अन्याय से मुक्ति हो और व्यक्ति की स्वतंत्रता भी हो ।"[2] उनकी कविताएँ उस मोड की सूचक है जहाँ से नई कविता नवीन दिशाओं की ओर अग्रसर होती है । इसलिए डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा - नई कविता की पहचान जहाँ से बननी शुरू होती है वहाँ सर्वेश्वर की कविताएँ हैं ।"[3]

अज्ञेय ने सर्वेश्वर की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्य रचनाएँ -भाग -3 - पृ. 10 - प्र. 1992
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - आजकल - सितंबर 1980 - पृ. 13
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी - कल्पना - जनवरी 26 - पृ. 20

लिखा कि समकालीन सत्य और यथार्थ को जो नए कवि सफल तथा सबल हाथों से पकड सके हैं - जो सच्चे अर्थों में समकालीन जीवन से संपृक्त है - उनमें सर्वेश्वर का विशेष स्थान है । वह मूलगुण जो कवि दृष्टि को रविदृष्टि से अधिक गहरे पहुँचाता है वह गुण इनमें है । हमारे जीवन के अधूरेपन का व्यास नाप लेनेवाली हमारी दृष्टि को बराबर बढाने की अधिक गहराई और विस्तार दोनों देने की - उनमें एक उत्कट बेचैनी है । अत: नई कविता के अधिष्ठाता शीर्षस्थ कवियों में एक नाम है - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ।

सर्वेश्वर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और निर्भयता पर ज़ोर देनेवाले कवि हैं । इसलिए वे कविता को गंभीर रचनाकार्य मानते हैं । व्यापक जीवन, वयस्क समझदारी, और ईमानदार अभिव्यक्ति के कारण "तीसरा सप्तक" के वक्तव्य में उन्होंने लिखा - "जो सत्य है उसे चुपचाप अपनाए रहने भर से काम नहीं चलेगा । बल्कि जो असत्य है उसका विरोध करना पडेगा और मुँह खोलकर कहना पडेगा कि वह गलत है ।"[1] इसलिए उनकी मान्यता है कि

मैं नया कवि हूँ
इसी से मानता हूँ
चश्मे की तले की दृष्टि बहरी होती है
इसी से सच्ची चोटें बाँटता हूँ
झूठी मुस्कानें नहीं बेचता ।[2]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - तीसरा सप्तक - पृ. 208 - प्र. 1959
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 425 - प्र. 1959.

मनुष्य को केन्द्र में रखकर और नियति से टकराते हुए कविता में जो कुछ भी व्यक्त होना चाहिए वह सर्वेश्वर में है । लेकिन एक बात ध्यान देने की यह है कि जीवन और मृत्यु के बीच की स्थिति को "नियति" का बाना पहनाकर स्वीकार करने के लिए सर्वेश्वर कदापि तैयार नहीं है । यही उनके कवि व्यक्तित्व की विशिष्टता है ।

एक विशेष प्रकार की निजता और आत्मीयता उनकी कविताओं में शुरू से आखिर तक द्रष्टव्य है । वे अपने साहस को हमेशा ज़िन्दा रखना चाहते हैं, और अपनी असफलताओं और सीमाओं के साथ मरकर, बिखरकर अपने भीतर शक्ति अर्जित करना चाहते हैं । उनका यह आत्मविश्वास भरा स्वर "पथराव" शीर्षक उनकी कविता में हैं -

मैं जानता हूँ पथराव से कुछ नहीं होगा
न कविता से ही
कुछ हो या न हो
हमें अपना होना प्रमाणित करना है ।[1]

सर्वेश्वर के लिए "अपना होना प्रमाणित करना" ही कविता करने का लक्ष्य है । सर्वेश्वर लिखते हैं -"सच तो यह है कि मैं कविता लिखकर केवल अपना होना प्रमाणित करता हूँ । मैं यह मानता हूँ कि हम जिस समाज में है, जिस दुनिया में है, वहाँ हमें अपना होना प्रमाणित करना है ।"[2]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 90-91 - प्र. 1973
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्य रचनाएँ भाग-3 - पृ. 20 - प्र. 1992

सर्वेश्वर का रचना-संसार इस बात का ठोस प्रमाण है कि वे जनचेतना के संघर्षशील रचनाकार है । उनकी यह संघर्षशीलता और बेचैनी पूरा युगबोध लेकर उभरती है । युगजीवन से संपृक्त सर्वेश्वर का कवि कर्म लाचार, बेचैन जनता के गूँगेपन की आवाज़ भी है । सर्वेश्वर कभी भी समझौतापरस्त कवि नहीं रहे बल्कि वह हमेशा जुझारू कवि रहे ।

विद्रोही चेतना को उसकी संपूर्ण भाव-भंगिमा के साथ प्रस्तुत करने के लिए कवि ने व्यंग्य का रास्ता अपनाया है । डा. कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा - "व्यंग्यकार अपने विवेक से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को न सह पाने के कारण, अपने भीतर सत्य की आग का अनुभव होने के कारण विद्रोही हो जाता है । सर्वेश्वर इसी बोध के विद्रोही कवि हैं । एक प्रकार से निराला और मुक्तिबोध की विद्रोही परंपरा का यह सबसे बडा वर्तमान में कवि कहा जा सकता है ।"[1]

क्रांति की ज़मीन तैयार करने को सर्वेश्वर ने अपना काव्य प्रयोजन माना है ताकि दूसरे भी क्रांतिबीज बो सके । सर्वेश्वर ने प्यार भरी दृष्टि को भी मशाल बनाना चाहा है जिसके प्रकाश में शत्रुओं के चेहरों की पहचान हो सकें । मानवीय करुणा और तीव्र संवेदना कवि के क्रांतिस्वरों को ताकत देती है । दरअसल सर्वेश्वर की जनचेतना का क्रांति स्वर मानवीय अधिकारों के लिए संघर्षशील ओजस्विता का प्रतीक है ।

क्रांति की बात करनेवाले सर्वेश्वर इस बात से अवगत है कि कविता से समाज में बदलाव लाना असंभव है । क्रांति को उसकी पूरी

---

1. डा. कृष्णदत्त पालीवाल - सर्वेश्वर और उनकी कविता - पृ. 31 -प्र. 1992

ताकत के साथ लाने में वे सक्षम भी नहीं है । लेकिन चुप रहना सर्वेश्वर को मान्य नहीं । इसलिए सर्वेश्वर लिखते हैं -"कभी-कभी दूसरे को बदल सकने की इच्छा से भी कविता लिखी जो एक किस्म का भीतरी जवाब ही था । पर कविता से मैं किसी एक को भी नहीं बदल सकता - इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ । समाज तो बहुत दूर की बात है ।"[1]

सर्वेश्वर के लिए इनसानी सरोकार कविता के लिए पहली शर्त है । उनके लिए कलम में स्याही भरना जानवर से इनसान बनना है । बन्दूक में गोली भरना इनसान से जानवर बनना । आदमी की फौलादी और स्वाभिमानी आज़ाद चेतना को वे हर कहीं रेखांकित करते हैं । यही उनके जनवादी चिन्तन का प्रेरणा स्रोत है ।

काव्यात्मक संवेदना के बारे में सर्वेश्वर के अपने कुछ विचार हैं । उन्होंने कहा -"मेरा ख्याल है कि जीवन की समग्रता की संवेदना काव्यात्मक संवेदना है । कथा का टुकडा जब पूरी मानवीय नियति के साथ अपने भाव संदर्भ में भीतरी परतों समेत उघाडकर देखा जाता है तो काव्यात्मक संवेदना में परिणत होता है ।"[2] यह काव्यात्मक संवेदना यथार्थ की तह में जाकर उसमें छिपी बातों को प्रकाश में लाकर मानवीय नियति से जोड़ने का प्रयास करती है ।

सर्वेश्वर की मान्यता है कि विषय की पूर्णता और

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - आजकल - सितंबर 80 - पृ. 12
2. वही

तीव्रता व प्रभाव को प्रस्फुटित करने के लिए रूपविधान के अनुशासन को भंग करना पडे तो भी कुछ बिगडेगा नहीं । उन्होंने लिखा है -"मैं विषयवस्तु को रूपविधान से अधिक महत्व देता हूँ ।"[1] अर्थात् सर्वेश्वर कविता के रूप को प्रश्रय देने के बगैर विषयवस्तु को प्रोत्साहित करनेवाले कवि है । लेकिन कविता लिखना उनके लिए बहुत गौरव की बात है । उसको सरल काम के रूप में स्वीकार करने को सर्वेश्वर तैयार नहीं हैं ।

भाषा की सरलता या सहजता पर सर्वेश्वर काफी बल देते थे । उन्हें कभी भी ऐसा नहीं लगा कि ज़्यादा सरलता का आग्रह कविता के कवितापन को कम कर देगा । हमेशा सर्वेश्वर की कोशिश यही रही कि सहज बोलचाल की भाषा का प्रयोग कविता में हो । उनका मत है -"ऐसा काव्य जिसके लिए दुरूह, जटिल और अमूर्त की भाषा आवश्यक हो, मैं नहीं रच सकता, क्योंकि मेरी संवेदना की बनावट वैसी नहीं हैं । इसलिए किसी आग्रहवश ऐसा नहीं किया है, बल्कि सहज प्रकृतिवश ही मैं ने कविता में सरल भाषा को स्वीकार किया है - उसी में काव्य रचा है ।"[2] अतिसरलीकरण के मुद्दे को उठाने के लिए सर्वेश्वर तैयार नहीं है । क्योंकि उनके मत में वह दोष नहीं है । लेकिन अनुभूति की सघनता वहाँ ज़रूर होना चाहिए । "सघन अनुभूति को अमूर्त किए बिना दूसरों तक सीधी सहज भाषा में संप्रेषित करना काव्य का गुण होता है । दोष नहीं । मेरे विचार में बडे काव्यों का तो यह गुण हमेशा से रहा है ।"[3] कविता को सब कहीं पहुँचना है । सर्वेश्वर के लिए कविता का उद्देश्य तो यही है कि वह सब तक पहुँचे । श्रेष्ठ कविता के बारे में सर्वेश्वर की अपनी एक मान्यता है । यह उनकी काव्य सर्जना की प्रतिभा और कवि कर्म की स्वेच्छा

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ. 210 - प्र. 1959
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्य रचनाएँ भाग -3 -पृ. 25 - प्र. 1992
3. वही - पृ. 26

का परिचायक है । "तीसरा सप्तक" के वक्तव्य में उन्होंने लिखा - "अन्त में इतना ही कहना है कि कवि के वक्तव्य और कविता के वक्तव्य में अन्तर होता है । कविता अपना वक्तव्य स्वयं देती है । कवि की वकालत उसके लिए ज़रूरी नहीं है क्योंकि आगे भी उसे रहना है तो अपना वक्तव्य स्वयं देना होगा, कवि सदैव साथ नहीं रहेगा । ऐसी कविता जो रक्षणीय हो उसका न रहना ही अच्छा है । और मुझे कवि बनने का शौक नहीं है ।"[1] सर्वेश्वर की स्पष्ट-वादिता में कविता संबंधी कई विचार भरे पडे हैं जिनका आधुनिक कविता के संदर्भ में काफी मूल्य है ।

अपने कवि कर्म और सामाजिक दायित्व को लेकर सर्वेश्वर के स्पष्ट विचार हैं । विचारों या प्रतिक्रिया के स्तर पर ही उनके ये विचार प्रकट नहीं हुए हैं । विचारों का अपना महत्व है क्योंकि उनकी कविता इन विचारों के साथ है । सर्वेश्वर की कविता संबंधी मान्यताओं में उनका जुझारू कवित्व ही झलकता है । उसी प्रकार उनकी कविता भी जुझारू ढंग की है । उनके विचारों में मनुष्य मात्र की सही सहभागिता को व्यक्त करने की अतीव इच्छा है और उनकी कविता मनुष्य की सहभागिता की अभिव्यक्ति है । इस प्रकार विचारों और प्रखर रचनात्मकता के कारण ही सर्वेश्वर समकालीन कविता के सहभागी कवि बन गये हैं ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का कृतित्व पक्ष अपने में अनूठा है । हिन्दी कविता के क्षेत्र में सर्वेश्वर का महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन उनकी

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - तीसरा सप्तक - पृ. 211 - प्र. 1959

सृजनात्मकता मात्र कविता तक सीमित नहीं है । विभिन्न विधाओं में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । कविता में जितनी सफलता है उतना सफल गद्य भी उन्होंने लिखा है । यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि जितनी ऊर्जा शक्ति का परिचय उन्होंने कविता में दिया है उतना ही गद्य की विभिन्न विधाओं में भी दिया है । अर्थात् लेखन उनके लिए गंभीर कार्य रहा है । उसमें सर्वेश्वर ने अपने समय और समाज को देखा है । जीवन यथार्थ का सही बिम्ब वे उसमें गुंफित करना चाहते हैं चाहे रचना का साधन नाटक हो उपन्यास हो या कहानियाँ । सामाजिक विषयों पर उनकी टिप्पणियाँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण है । उनके लेखन कार्य का संक्षेप में विवरण इस शोध प्रबन्ध में वांछित है ।

नाटक साहित्य

नाटक के क्षेत्र में सर्वेश्वर की भूमिका को चर्चा प्रथमतः अभीष्ट है । दरअसल जनवादी चेतना के तारतम्य हैं । उनके नाटकों में प्रतिबद्ध दृष्टि का गहरा परिचय मिलता है । अपने नाटकों के संबंध में सर्वेश्वर ने लिखा है -"मैं नाटक एक विशेष वर्ग के लिए लिख रहा हूँ ऐसे वर्ग के लिए जो गाँव में है और चाहता था कि वह नाटक गाँव तक पहुँचे ।"[1] यह बात वास्तव में एक प्रस्ताव मात्र नहीं है । इसमें उनके नाटक संबंधी मान्यताएँ स्पष्ट होती हैं । उनका रचनात्मक विकल्प भी स्पष्ट होता है । यह विकल्प भी स्पष्ट होता है । यह विकल्प साहित्य की उपादेयता को स्पष्ट करनेवाला भी है जो सदैव प्रासंगिक भी हो सकता है ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - नटरंग - अंक-32 - 1978.

स्वतंत्रता से पूर्व और पाश्चात्य के भारत की परिस्थितियों से सर्वेश्वर पूर्णत: अवगत हैं । वे इस सत्य से भी परिचित हैं कि आम आदमी की अवस्था दयनीय है । गरीबी के मुद्दे को उन्होंने प्रस्तुत किया है । गरीबी पर उपहास करनेवाले लोगों को भी उन्होंने अवतरित किया है । नाटकों के माध्यम से सर्वेश्वर ने वर्तमान राजनीति का दाव पेंच, चालबाज़ियाँ आदि का खुलासा किया है । उनके सारे नाटक व्यवस्था विरोधी हैं । वे जनसमर्थक हैं ।

प्रकाशन क्रम में द्वितीय मगर मंचीकरण में प्रथम नाटक है "लडाई" । 1979 में इसका प्रकाशन हुआ और 1970 में मंचीकरण । "बकरी" लेखन क्रम से द्वितीय मगर प्रकाशन क्रम से प्रथम नाटक है । 1974 में "बकरी" का प्रकाशन हुआ । 1981 में "अब गरीबी हटाओ" का प्रकाशन हुआ । इन तीनों नाटकों के अलावा चार एकांकियाँ हैं "बुद्ध की करुणा", "सत्यवादी गोखले", "हवालात", "हिसाब किताब" आदि । "कल भात आएगा", "हाथी की पों", "अनापशनाप", "भों भों-खों खों", "लाख की नाक" आदि उनके बाल नाटक हैं । "मर गया ले जाओ" नामक एक नुक्कड नाटक, चार नृत्यनाटिकाएँ, दस रेडियो रूपक आदि सर्वेश्वर की ओर से प्राप्त है । इन सबको "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्यरचनाएँ" भाग-2 में संकलित किया गया है ।

1. लडाई

वस्तुविन्यास

सब तरफ व्याप्त भ्रष्टाचार से तंग आकर जब उससे प्रतिक्रियान्वित होने का फैसला किया जाता है तो उसे सहज ही कहा जाएगा

क्योंकि वह हमारी मेधा का परिचायक है । दरअसल "लडाई" भ्रष्टाचार के विरुद्ध लडनेवाले एक युवक की पराजय कहानी है ।

"लडाई" अपने संक्षिप्त चुस्त कलेवर में समाज की सडी-गली अवस्थाओं के तीखेपन को कटुता के साथ प्रस्तुत करता है । इस नाटक का नायक सत्यव्रत ढोंग, बेईमानी, गरीबी, मानसिक गुलामी, औपनिवेशिक संस्कार, स्वार्थान्धता आदि के विरुद्ध अकेले लडता है । सत्यव्रत न कोई गलत काम करता है और न ही किसी को करने देता है । उसके बीवी-बच्चे इस प्रयास में उनके साथ देने को तैयार नहीं है । इसलिए सत्यव्रत की उपेक्षा सबके द्वारा होती है । सत्यव्रत बहुत जल्दी समझ लेता है कि समाज का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है जहाँ बेईमानी और झूठ-फरेब से मुक्त हो । धर्म की आड में पाखण्ड ही पाखण्ड है । सत्यव्रत देश में फैले हुए ढोंग और पाखण्ड के प्रति असन्तोष और आक्रोश ज़ाहिर करता है -"चोरी, मक्कारी, झूठ-फरेब सबके भाव चढे हैं और लोग उन पर आदर्शों का अच्छे से अच्छा लेबल लगाना सीख गए हैं ।"[1] गलतियों से लडते-लडते सत्यव्रत के मन और तन पर असह्य आघात सहना पडता है । सत्यव्रत की अकेली लडाई और उसमें उसकी विफलता से ज़ाहिर है कि समाज के अन्धकार को कोई एक दो व्यक्ति दूर नहीं कर सकते हैं । अपने इस नाटक को प्रतिबद्ध मानते हुए सर्वेश्वर लिखते हैं -"यह नाटक दिखाता है, वैसे अकेले लडाई समाज और व्यवस्था को तोडती नहीं, स्वयं गरिमामय होकर भी टूट जाती है, अधिक नहीं रह जाती ।"[2]

पात्र परिकल्पना

"लडाई" का नायक सत्यव्रत जर्जर और भ्रष्ट देश को

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्य रचनाएँ भाग-2 - "लडाई"-छठा दृश्य-पृ. 61
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - लडाई (इस नाटक के बारे में) - पृ.

परिवर्तित करने की प्रतिज्ञ लेनेवाली पीढ़ी का प्रतिनिधि है । सामाजिक अत्याचारों से वह अकेले लडता है और पराजित होता है । लेकिन सत्यव्रत का चरित्र काफी प्रखर है । बीवी-बच्चों से तिरस्कृत होने पर भी वह अपनी संघर्ष को ज़ारी रखता है । एक अंगार की तरह वह धधकता है मगर आग बनना उनके भाग्य में लिखा नहीं गया है । लेकिन उसकी पराजय आज के समस्त मूल्यों की गिरावट के संदर्भ में बहुत बडा सच है । वस्तुत: नाटक में वह प्रतीक है । इसलिए उसकी पराजय सत्य की पराजय है ।

1970 में लडाई का प्रथम मंचन हुआ । उसके निर्देशक थे ओम शिवपुरी । यह मंचन नई दिल्ली के माडर्न स्कूल में हुआ था । इसका रेडियों रूप भी आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुआ था । यद्यपि पाठ्यस्वरूपमा में यह उतना संश्लिष्ट के नहीं है लेकिन मंचीयता की दृष्टि से "लडाई" सफल नाटक है ।

2. बकरी

वस्तुविन्यास

"बकरी" सर्वेश्वर का बहुचर्चित नाटक है । भोले-भाले ग्रामीणों की अभावग्रस्तता एवं मार्मिक स्थितियों को राजनीति की सख्ती के संदर्भों में देखा गया है । तीन डाकुओं द्वारा एक गरीब ग्रामीण औरत विपत्ति की बकरी को हडप लिया जाता है । बकरी को गाँधीजी की बकरी कहकर ग्रामीणों को धोखे में डालते हैं । विपत्ति विरोध करती है तब उसे भारत-सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत कैद किया जाता है । डाकु "बकरी स्मारक निधि", "बकरी शांति प्रतिष्ठान", "बकरी संस्थान" "बकरी सेवा संघ"

जैसी संस्थाओं की स्थापना करके ग्रामीणों का धन हडप लेते हैं । बकरी आगे चलकर ग्रामीणों की देवी बन जाती है । डाकू लोग बाद में चुनाव जीतते हैं और वह भी बकरी के नाम पर । व्यवस्था की चालों, चालाकियों और साजिशों को चुनौती देनेवाला एक युवक भी है, इस नाटक में । वह न पैसे का गुलाम है न डरपोक । गलत को गलत कहने से वह तनिक भी हिचकिचाता नहीं । वह कहता है -"यही कि वोट, चुनाव सब मज़ाक हो गया है । सब झूठ पर चला रहा है । गरीबों की बकरी पकडकर उनसे पहले पैसे दुहा । अब वोट दुह रहे हैं । फिर पद और कुर्सी दुहेंगे ।"[1] युवक को बाद में वोट की तोड-फोड करने के अपराध में जेल भिजवाया जाता है । यही युवक अंत में नारा लगाता हुआ आता है । कर्मवीर, दुर्जनसिंह और सिपाही उसको घेरकर रस्सी से बाँधने के साथ नाटक की समाप्ति होती है ।

पात्र परिकल्पना

विपत्ति इस नाटक का केन्द्र पात्र है । अपनी बकरी के हडप लिए जाने पर प्रतिरोध करने के लिए तुली विपत्ति को जेल में डाला जाता है । मगर चुप रहने बजाय वह "बकरी, बकरी" चिल्लाती रहती है । नारी होते हुए जो बन पडता है वह करती है । इस नाटक का दूसरा प्रमुख पात्र है युवक । अनेक कठिनाईयों का सामना करने के बावजूद वह अन्याय के खिलाफ लडता है । प्रतिशोध की आग में जलनेवाले युवा-पीढी का प्रतीक है वह युवक । कर्मवीर, दुर्जनसिंह, सिपाही आदि पात्र इस नाटक में अनीति, अत्याचार, ढोंगी, राजनीतिज्ञ, अमानवीय व्यवहार तथा पाखण्ड के प्रतीक है ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्यरचनाएँ भाग-2 - बकरी - दूसरा अंक - पहला दृश्य - पृ. 38

1974 में कविता नागपाल द्वारा 18 जुलाई 1974 को त्रिवेणी कला संगम, नई दिल्ली की उद्यान रंगशाला में "बकरी" का प्रथम मंचन किया गया । प्रकाशन के पूर्व राष्ट्रीय नाट्य मंडली द्वारा दिल्ली में इसका प्रस्तुतीकरण हुआ था । मंचीकरण की दृष्टि से बकरी भी एक सफल नाटक है ।

3. अब गरीबी हटाओ

वस्तुविन्यास

"अब गरीबी हटाओ" सदियों से अपमान और शोषण के शिकार बने लोगों की पक्षधरता व्यक्त करनेवाला नाटक है । यातना और पीडा को व्यवस्था अपनी सुरक्षा के नाम पर लोगों की पीठ पर रख देती है । राजनीति की घिनौनी वृत्तियों में से इस नाटक की कथावस्तु मुख्य है जो इस नाटक के वस्तुविन्यास के केन्द्र में रखा गया है ।

आज़ादी की एक लंबी अवधि के बाद भी देश की प्रगति जैसी की तैसी है । देश वहीं का वहीं चक्कर काट रहा है । चुनाव के हथकंडों पर भी इस नाटक में व्यंग्य है । गाँव में सरकारी सहायता से प्रधानमंत्री का पिट्ठू गुंडा "शर्मा" अपने विरोधी की हत्या के उपरांत वाचाल विरोधी गरीब ग्रामीण हरिजन के हत्यारा सिद्ध करता है । उससे प्रतिशोध लेने की उम्मीद से जब हरिजन लोग आये तो अपने बीवी बच्चों का दर्दनाक दास्तान उन्हें सुननी पडी । पति के जाने के बाद बेचारी "गरीबा" अपनी बच्चों को लेकर कुएँ में कूद पडी लेकिन पुलीस ने पकड ली । फिर वह राजा, मंत्री, पुलीस और सिपाही की वासना पूर्ति का साधन बनती है । बच्चे कहाँ है

इसका भी कोई पता उसको नहीं है बल्कि उसे बताया जाता है कि बच्चे बड़े मज़े में हैं । सर्वेश्वर यही बताना चाहते हैं कि आम जनता देश में रक्षकों के वेष में बैठे हुए लुटेरों के शोषण के शिकार हैं । इस शोषण को समाप्त करने के लिए शोषित वर्ग को विशेषकर गरीब ग्रामीण दलितों को सशक्त क्रांति का हथियार अपनाना चाहिए । नाटक में नट कहता है - "अब यही रास्ता आप लोगों ने छोडा है । राजतंत्र और लोकतंत्र दोनों को हम देख चुके हैं । सबने अपना मतलब साधा है । अब गरीबी हटाने का यही तरीका रह गया है, सब मिलकर गरीबी हटाओ ।"[1] सर्वेश्वर ने नाटक के अंत में यही दिखाया है कि एकता के साथ सशक्त क्रांति का रास्ता अपनाना ही उचित है । अपने भाग्य की प्रतीक्षा न करने के बजाय उसे छीन लेना ही उचित है ।

पात्र परिकल्पना

"अब गरीबी हटाओ" का विकास दो विभिन्न दृश्यों द्वारा होता है । एक में राजशासन है तो दूसरे में राजतंत्र । दोनों में सत्ताधारी ताक में बैठी है और गरीबों का खुन चुस रही है । राजा और पुलीस अधिकारी दोनों शोषण का प्रतीक है सिर्फ समय बदला है । इन दोनों की वासना की शिकार है युवती । दोनों गरीब औरत को अपनी इच्छा पूर्ति का साधन बनाते हैं । वैसे गरीब औरत शोषित आम जनता का प्रतीक बन जाती है, जिनकी नसीब में वेदना-पीडा और गरीबी के अलावा और कुछ लिखा ही नहीं । नायक युवक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ तो उठाते हैं लेकिन जेल ही उन्हें मिलता है । इस नाटक की पात्र सृष्टि में भी प्रतीकात्मकता का सहारा लिया गया है ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ -भाग-2 - अब गरीबी हटाओ - सातवाँ दृश्य - पृ. 108

"अब गरीबी हटाओ" का प्रथम मंचन भानुभारती के निर्देशन में "रंगपीठ" द्वारा आईफेक्स हाल नई दिल्ली में 1981 जनवरी 12 को किया गया था । यह नाटक मंचीयता के सभी गुणों से युक्त हैं ।

सर्वेश्वर के तीनों नाटकों में संगीत का अच्छा प्रयोग मिलता है । संगीत की ताकत से सर्वेश्वर वाकिफ हैं और इसलिए उसका हू-ब-हू प्रयोग उन्होंने इसमें किया है । सर्वेश्वर ने एक साक्षात्कार में कहा है- "अपनी कविता का दायरा मैं उतनी दूर तक बढ़ाना चाहता हूँ कि वह निरक्षरों तक फैले । नाटक लिखना ऐसी ही एक कोशिश है जिसमें गाई जानेवाली कविताएँ इस्तेमाल की गई है ।"[1] इसे एक तथा प्रयोग कहा जा सकता है ।

सांप्रदायिकता की गहरी पहचान और रंगमंचीय सूझबूझ के कारण नाटकों की सार्थकता दुगुनी हो गयी है । तीनों नाटकों का रंगमंचीय प्रस्तुतीकरणों को काफी सराहा गया है । अपने इन तीनों नाटकों के द्वारा सर्वेश्वर ने हिन्दी रंगमंच को मौलिक पद्धतियों से समृद्ध किया । पारंपरिक नौटंकी और पारसी रंगशैली के मिले-जुले रूप को ही सर्वेश्वर ने अपनाया है । प्राचीन नाट्य परंपरा के पुनर्मूल्यांकन का प्रयास भी सर्वेश्वर ने किया है । संस्कृत नाटकों के सूत्रधार का प्रयोग नए अर्थ में सर्वेश्वर ने किया है । लोकगीत के द्वारा नाटकों को जनसाधारण से जोड़ना भी उनका लक्ष्य था ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के तीनों नाटक हिन्दी रंगमंच की उपलब्धियाँ हैं । समसामयिक राजनीतिक दावपेंच और सामाजिक विडंबनाओं

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - आजकल - सितंबर 1980 - पृ. 11

का पर्दाफाश करके सर्वेश्वर ने आम जनता में जोश पैदा करने की कोशिश की है । और उस कोशिश में वे सफल भी निकले हैं । उनके नाटक सदैव गहरे लोकानुभव प्रदान करनेवाले रहे हैं ।

एकांकियाँ

1. हवालात

तीन लड़के और सिपाही इसके पात्र हैं । बच्चे ठिठुरती ठंड में पेड़ के नीचे बिना कोई कपड़े सिकुड़कर बैठे हैं । किसी भागनेवाले की तलाश में जब सिपाही वहाँ आता है तब वे तीनों अपने को गुनाहकार बताते हैं । एक जेबकतरा है तो दूसरा खूनी और तीसरा नक्सल । वे सबूत भी देते हैं । तब सिपाही उनकी आँखों में पट्टी बाँधकर उन्हें भटका देते हैं । वे ठंड से बचने के लिए हवालात में जाना चाहते हैं लेकिन सिपाही उन्हें उस पेड़ के नीचे छोड़कर चले जाता है ।

अभावग्रस्त नई पीढ़ी का एक बेबस चित्र यहाँ पर हमें मिलता है । एक लड़का कहता है -"पर गाली सहना खूब सीख गए हैं । हर एक की गाली हम सह लेते हैं । संकोच न कीजिए सर, जमके गाली दीजिए ।"[1] इसमें अभावग्रस्तता की दारुणता का चित्र ही इच्छित है । उन लड़कों का कोई ठिकाना नहीं है । वे हवालात तक जाने के लिए तरस रहे हैं ताकि एक छत उन्हें मिले ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्य रचनाएँ - भाग-2 - हवालात - पृ. 117

हिसाब किताब

बाल कल्याण केन्द्र में जिस तरह बच्चों को सताया जाता है, उसी का वर्णन इस एकांकी में किया गया है । मास्टरनी और सेठजी मजे में रोटी खा रहे हैं, लेकिन बाहर बैठे तीन बच्चे भूख के कारण रो रहे हैं । उन्हें तीन रोटियाँ देने का वादा किया गया था लेकिन उन्हें मिला सिर्फ एक । एक से तीनों ने खाया तब सेठजी के हिसाब में हुई रोटी तीन, बच्चों के हिसाब में एक । उनको डांटकर उन्हें लेटने की आज्ञा दी जाती है । जब जोकर आता है तब मास्टरनी अपना आधा खाया टुकडा उसे देती है । दूसरे दिन जोकर बच्चों के सामने एक रोटी लेकर जाता है और रोटी के ऊपर नीचे दो लाइन खींचता है । तीन पट्टियों के बीच गोल घेरे को कर देता है । वह तब झंडा हो जाता है और बच्चों को सिखाता है कि कैसे एक तीन और तीन एक में तब्दील हो जाता है ।

बच्चे देश का भविष्य है । जोकर बुद्धिजीवि का प्रतीक है और मास्टरनी और सेठ नौकरशाही और पूँजीपति वर्ग के । इन पात्रों के माध्यम से सर्वेश्वर ने राजनीतिक, सामाजिक कुरीतियों और उनको प्रोत्साहित करनेवाले बुद्धिजीवि वर्ग पर करारा चोट किया है । मंचीयता की दृष्टि से यह सफल एकांकी है ।

बाल नाटक

सर्वेश्वर ने पाँच बाल नाटक लिखे हैं । बच्चों के लिए एक रंगमंच सर्वेश्वर का सपना ही नहीं बल्कि लक्ष्य रहा है । इसलिए उन्होंने

बाल नाटकों की रचना की । "कल भात आएगा", "लाख की नाक" उनके चर्चित बाल नाटक हैं । "हाथी की पों", "अनाप शनाप", "भों भों - खों खों" भी उनका बाल नाटक हैं । बड़ी प्रभावशाली ढंग से सर्वेश्वर ने इन सबकी रचना की । ये नाटक हिन्दी बाल रंगमंच के लिए सर्वेश्वर का महत्वपूर्ण योगदान है ।

समसामयिक सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों से बच्चों का परिचय करवाना, उन्हें अवगत कराना और उनमें सजगता और चेतना जगाना इसके उद्देश्य हैं । सर्वेश्वर नयी पीढ़ी को जड़ होने से बचाने को अपना धर्म मानते हैं । उनके बाल नाटक बच्चों में एक जोश, स्फूर्ती, आक्रोश जैसे भाव जगाने में समर्थ निकले हैं ।

सर्वेश्वर का कथा साहित्य

कहानी

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का पदार्पण 1940 के बाद होता है । उन्होंने अपने लेखन का आरंभ भी कहानी के साथ किया था । हिन्दी में कवियों की कहानियों की अलग भूमिका रही है । प्रतिष्ठित कवि कहानीकारों को छोड़कर हिन्दी के जितने कवियों ने कहानी लिखी है उनकी ओर पाठकों का ध्यान उतना नहीं गया है । मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर आदि की कहानियों के संदर्भ में यह बात सही है । वास्तव में ऐसे श्रेष्ठ कवियों की कहानियों का भी गहराई से अध्ययन आवश्यक है जिससे उनकी कहानियों के कुछ अनछुए पक्ष स्पष्ट हो सकते हैं । यहाँ सर्वेश्वर की कहानियों का सामान्य परिचय ही वांछित है ।

कवि-कथाकारों की कहानियों को अलग खाते में रखने की रीति के बारे में सर्वेश्वर ने कहा -"सच तो यह है कि हम लोगों की कहानियों में एक अतिरिक्त गठन है, जो भाषा और कथारूप के तत्वों को सूक्ष्मता से पकडने और इस्तेमाल करने से आती है । इसे आगे चलकर बिसरा दिया गया । इसी अतिरिक्त गठन के कारण कवि कथाकारों की कहानियों को नई कहानी के आन्दोलन कर्ताओं ने आँखों से दूर रखा क्योंकि गौर से देखते तो ये कहानियाँ उनकी आँखों को चुभती ।[1] यहाँ जिस "हम" का प्रयोग किया है वे हैं मुक्तिबोध, भारती, कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा आदि ।

"काठ की घंटियों" के लेखक पहले कहानीकार के रूप में आए । सन् 1943 से सन् 1950 तक सर्वेश्वर कहानियों के ही लेखक थे । 1950 में उन्होंने कविता लिखना शुरू किया । लेकिन तीन चार वर्ष के अन्तराल के बाद उन्होंने फिर कुछ कहानियाँ लिखीं ।

यहाँ एक बात स्पष्ट है कि प्रत्येक मोड पर रचनाओं के माध्यम को ही उन्होंने बदला नहीं है बल्कि संवेदना के स्तर और दिशा भी बदलने का कार्य किया है । अज्ञेय की मान्यता है कि "इस प्रकार कहानी लेखक कुछ वर्ष कविता लिखकर जब फिर कहानी की ओर लौटता है तो फिर उसी सूत्र को नहीं उठाता जिसे वह छोड गया था बल्कि एक नए प्रदेश में नयी राह पर चलता हुआ अपने को पाता है । इसी प्रकार कवि जब गद्य लेखन के अन्तराल के बाद फिर काव्य क्षेत्र में लौटता है तो वह भी एक नए आयाम में ।"[2]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - आजकल - सितंबर 1980 - पृ. 12
2. अज्ञेय - भूमिका - काठ की घंटियाँ - पृ. 7-8 - प्र. 1959

1945 में सर्वेश्वर ने अपनी पहली कहानी "क्षितिज के पार" लिखी और "क्षत्रिय मित्र" में यह कहानी छपकर आयी । यह कहानी प्रथम प्रेम को आधार बनाकर लिखी गयो है । यह लोकधर्मी दृष्टि से ओतप्रोत है ।

"बदला हुआ कोण", "क्षितिज के पार", "कच्ची सडक" और "अंधेरे पर अंधेरा" सर्वेश्वर के कहानी संग्रह है । "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ भाग-1" में उनकी कहानियाँ संकलित हैं । "काठ की घंटियों" में भी कुछ कहानियाँ हैं ।

नई कहानी जीवन यथार्थ के विभिन्न स्तरों का सूक्ष्म चित्रण करती है । मनुष्य की बदलती दृष्टि को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने की रीति को कहानीकारों ने स्वीकारा है । सर्वेश्वर की कहानियों में सामाजिक परिवेश का अंतरंग पक्ष प्राप्त होता है ।

स्वतंत्रता सेनानी आज़ादी की लडाई के समय पूज्यनीय थे । लेकिन समय के बदलाव के साथ मूल्य घट गया है । स्वतंत्रता सेनानियों को दी जानेवाली पेन्शन लेने के लिए आनेवाला मास्टर श्यामललाल गुप्ता के माध्यम से इसको व्यक्त किया गया है । इस कहानी में सर्वेश्वर ने अपने आप को "पोलिटिकल सफरर"[1] माननेवाले श्यामलाल गुप्ता के ज़रिए ढोंगी राजनीतिज्ञों को और पाखंडी समाज को दिखाया है । सेनानियों को दी जानेवाली पेन्शन को "पागलों को देनेवाली पेन्शन"[2] कहनेवाला समाज का

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 224 - प्र. 1959.
2. वही

चित्र इस कहानी में है । संग्राम के दौर में जो उसके मित्र थे वे मिनिस्टर और एम.पी. हो गए हैं । अब गुप्ताजी को पहचानने के लिए मिनिस्टर तैयार नहीं है । पद और अधिकार का प्रभाव हमारे मूल्यों पर भी पडता है ।

यह कहानी उस आदर्शवादी व्यक्ति की है जो आदर्श की बातें कम और मूल्य की गिरावट की अधिक कर रहा है । इसका चित्र यों खींचा गया है । गंदे खद्दर कपडे, सोने की जगह साफ करने के लिए वस्त्रखंड, कुत्तों को डराने के लिए पत्थर आदि पोटली बाँधकर मास्टरजी चलते हैं न घर है न घरवाले, एक पैर में जूता है । इसके बारे में जब उनसे पूछा गया तब जवाब मिलता है 'यों तो इसकी भी कोई जरूरत नहीं थी । पर इधर पैर में कुछ घाव हो गया है । नंगे पैर चला नहीं जाता । इसलिए जूता पहन लिया है । काम चलाने से मतलब । अगर राष्ट्र के निर्माण में कोई योग नहीं दे सकता तो राष्ट्र की ऐसी छोटी मोटी बचत करके ही संतोष करता हूँ ।[1] इसके माध्यम से सामाजिक मूल्यों को बदलते परिवेश को दिखाया है ।

टूटे हुए पंख में समाज का एक दूसरा चित्र सर्वेश्वर ने प्रस्तुत किया है । एक धनी पिता की बेटी शीला कहानी की नायिका है । वह ऊधम मचानेवाली, सुन्दर लडकी है । प्रकाश उसका पडोसी है मित्र है । शीला की शादी हुई मित्रता भी छूट गयी । लेकिन दस वर्ष के बाद मसूरी के रेस्तराँ में सर्व करनेवाली लडकी के रूप में शीला को देखकर प्रकाश चकित रह जाता है । माँ, बाप, पति सबने उसका तिरस्कार कर दिया था । अब वह जीविकोपार्जन के लिए यह काम कर रही है । अल्मोडा के मैनेजर साहब

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ.232 - प्र.1959

की बेटी से मसूरी के रेस्तराँ में सर्विंग गर्ल तक की यात्रा एक नारी के जीवन की दर्दनाक अवस्था का ब्योरा है । पहले तो यह काम उसके लिए सह्य नहीं था मगर धीरे धीरे वह आदि हो जाती है । और कहती हैं "किसी तरह ज़िन्दगी काटनी है ।"[1] कहानीकार ने यथार्थ का प्रकरण प्रस्तुत किया है । इस प्रकार सामाजिक समस्याओं से भरपूर कई कहानियाँ सर्वेश्वर की ओर से हैं ।

सर्वेश्वर की अधिकतम कहानियाँ प्रेम कहानियों की कोटि में आती हैं । उनकी कहानियों में "पारिवारिक प्रेम संदर्भ, पति पत्नी के बीच का तनाव, आदि का विस्तृत चित्रपट उपलब्ध है । प्रेम का मादक व सुखद स्पर्श का अनुभव करानेवाली कहानियाँ सर्वेश्वर की ओर से प्राप्त हुई है । "प्रेमी", डूबता हुआ चाँद", "प्रेम विवाह", "क्षितिज के पार" आदि इसके अन्तर्गत आती है । सर्वेश्वर की अधिकतर प्रेम कहानियाँ भावुक मन की अभिव्यक्ति है ।

सर्वेश्वर ने समाज की "पिछडी" नारी का उत्कर्ष चाहा और कहानियों के द्वारा उसे प्रोत्साहित किया । स्वाधीनता के बाद शिक्षा के प्रसार के द्वारा भारतीय नारी समाज में जो सुधार आया उसका फायदा उठाना सर्वेश्वर का ध्येय रहा है । इसके लिए कहानी [illegible] को उन्होंने माध्यम बनाया । उनकी कहानियों की नायिकाओं में स्वतंत्र अस्मिता की तलाश स्पष्ट है । साथ ही साथ रूढ़ियों से बिलगित नारी के जीवन और तज्जन्य विषमताओं का चित्रण भी उनमें मिलता है । घर की चहारदीवारी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 79 - पृ. 11

में यद्यपि भारतीय नारी गिरफ्त है फिर भी वह सबकुछ जानती है । इसलिए "डूबता हुआ चाँद" की नायिका कहती है -"घर की चहारदीवारी में बन्द रहने पर भी हम लोग आदमी की नस-नस समझती है ।"[1]

सर्वेश्वर ने कहानी के शिल्प पक्ष पर काफी बल दिया है । अनुभवों को कहानी की वस्तु के कुशल विन्यास के रूप में प्रस्तुत करने के लिए शिल्प पक्ष पर ध्यान देना ज़रूरी है । कवि होने के कारण नए शैल्पिक प्रयोग उनकी कहानियों में बहुत मिलते हैं ।

सर्वेश्वर के लिए कहानी संघर्ष का अंश है क्योंकि उनका कहना है "मेरे लिए लेखक का धर्म सहज मानव का धर्म है । सहज स्वीकृति, सहज समर्पण का धर्म । इसके लिए मैं जिस कृत्रिम आदमी से लड रहा हूँ उसे परास्त कर देना ही लेखक की विजय है । लेखक की विजय का अर्थ है मानव नियति की एक व्यापक स्तर पर विजय ।"[2] यही कहानीकार सर्वेश्वर की दृष्टि है ।

उपन्यास

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के तीन उपन्यास हैं । 1955 में लिखा "सोया हुआ जल" और 1977 में लिखा गया "पागल कुत्तों का मसीहा" । ये दोनों लघु उपन्यास हैं । "सूने चौखटे" या "उडे हुए रंग" उनका एक अन्य उपन्यास हैं ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्य रचनाएँ भाग-1 - पृ. 230
   प्र. 1992
2. वही - पृ. 13

सोया हुआ जल

हिन्दी लघु उपन्यास के उस आरंभिक काल में लिखा गया अत्यन्त मौलिक एवं सफल शिल्प प्रयोग से युक्त उपन्यास है "सोया हुआ जल" । इसे शिल्प की दृष्टि से हिन्दी में अपने ढंग का अकेला लघु उपन्यास कहा जा सकता है ।[1]

"सोया हुआ जल" आधुनिक जीवन के अन्तरबाह्य के अन्तराल को लक्षित करता है । "राजेश और विभा पति-पत्नी है । मगर दोनों के अपने अपने प्रेमी हैं । दोनों आपस में कपटतापूर्ण व्यवहार करते हैं । प्रकाश अन्य चरित्र है जो जनक्रांति की बातें करता है, पर रूपयों की लालच में हत्या तक करता है । "सोया हुआ जल" व्यक्ति मन की भीतरी परतों को उघाडकर आधुनिक व्यक्ति के दोहरे आचरण को सिद्ध करता है । इसलिए सर्वेश्वर कहता है -"बाह्य परिस्थितियों के बदलने से काम नहीं चलेगा, आदमी को भीतर से भी बदलना पडेगा ।"[2]

विवशताएँ भीतर भीतर सुलगकर विस्फोटक स्थितियों का मार्ग प्रशस्त कर देती है । "सोया हुआ जल" इसी भाव को प्रतीकवत् करता है । यह केवल एक रात्रि के छः घण्टों के समय में एक धर्मशाला में घटित होनेवाली कथा नहीं है । यह एक नूतन शिल्प प्रयोग है । व्यावहारिक बोलचाल के होते हुए व्यंग्यधर्मी भाषा का प्रयोग इसमें हैं ।

---

1. माधुरी खोखला - हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प - पृ.112
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - सोया हुआ जल - पृ.53

पागल कुत्तों का मसीहा

पुराने जीवन मूल्यों के प्रति आग्रह और तज्जन्य स्थितियों का प्रतीकात्मक चित्रण पागल कुत्तों का मसीहा में हैं । "वह" या दीन मानवीय चेतना का प्रतीक है, विपत्ति उसकी आस्था है पत्नी और बच्चे सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्व के प्रतीक हैं । पागल कुत्ते बेकार और अनुपयोगी जीवन मूल्यों को प्रतीकवत् करते हैं । "वह" ही इन पागल कुत्तों को पकड लाता है यद्यपि पागल कुत्तों को पकडने पर चार इकन्नियाँ मिलती हैं । पुराने मूल्यों से मुक्ति पाने का संघर्ष आदमी को आस्था तक ले जाता है । यह आस्था उनका आत्मसत्य हैं । भय अर्थहीन मूल्यों से व्यक्ति को चिपका देता हैं । भय जब आस्था को ग्रसता है तब व्यक्ति अचेत हो जाता है । विपत्ति का पागलपन और दीनू का स्वयं को पागल कुत्तों के बीच छोड देना इसी ओर संकेत करता है । पागल कुत्तों का मसीहा एक प्रकार से हिन्दी उपन्यास साहित्य की विलक्षण प्रयोग है । इसी ने सर्वेश्वर को उपन्यासकार का पद प्रदान किया ।

सूने चौखटे {उडे हुए रंग}

"उडे हुए रंग" सर्वेश्वर का एक अन्य सामाजिक उपन्यास है जो दो उपन्यासों की तुलना में आकार में बडा है । कमला, रामू, रामू की माँ, अंधी नानी आदि के माध्यम से कथा विकसित होती है । सौतेली माँ की पीडा से विवश कमला का चित्रण भावुक ढंग से हुआ है । उसके पिता बडे दिलचस्प आदमी है । रामू और कमला के संवादों से कथा का विकास होता है । बिन माँ की एक बच्ची के जीवन का सूक्ष्मता से, वर्णन सर्वेश्वर ने किया है ।

सर्वेश्वर की टिप्पणियाँ

रचनाकार जब समय और तत्कालीन समाज के साथ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तभी वह रचनाकार बनता है । तत्कालीन सामाजिक गतिविधियों को देखकर चुप्पी साधना एक प्रतिबद्ध रचनाकार के लिए मान्य नहीं है । मुद्दों के प्रति प्रतिक्रियान्वित होना उनका धर्म बन जाता है । उसमें समझौते के लिए कोई स्थान नहीं । न किसी से डर है और ना ही किसी चीज़ की इच्छा है । एक प्रकार का खुला विद्रोह तब रचनाकार की वाणी में जागृत होता है । यह विद्रोह प्रतिरोधी भाषा को भी जन्म देता है । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना इसी श्रेणी में आनेवाले रचनाकारों में से हैं । उनके प्रतिबद्ध दृष्टिकोण के कारण सर्वेश्वर ने समय-समय पर संस्कृति, साहित्य, सामाजिक अवस्थाएँ आदि विषयों पर अनेक बेबाक टिप्पणियाँ लिखी है । इन्हें अनदेखा करना ठीक नहीं है । कवि-कथाकार सर्वेश्वर की रचनात्मक प्रतिभा की प्रखरता इन टिप्पणियों में व्यक्त हो जाती हैं । "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्यरचनाएँ" भाग-2, भाग-3 और भाग-4 में ये सारी टिप्पणियाँ संकलित हैं ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्यरचनाएँ भाग-2 में "रंगमंच" संबंधी उनकी टिप्पणियाँ हैं । अपने नाटकों के बारे में, दूसरे नाटककारों और उनके नाटकों के बारे में तथा नाटक के विभिन्न पक्षों पर सर्वेश्वर ने विचारात्मक टिप्पणियाँ लिखा हैं ।

"जनता के लिए नाटक" नामक अपनी टिप्पणी में वे कहते हैं -नाटक को आम आदमी यानी जनता यानी तीन चौथाई अशिक्षित लोगों की सोच समझ, आशाओं, आकाँक्षाओं, धार्मिक शोषण, अंधविश्वास

तथा एक नवनिर्मित समाज की समस्याओं से जोड़ो । नाटक द्वारा उन्हें दृष्टि दो, उन्हें ज़बान दो ।"[1] अपने नाटकों का उपयोग किस तरह होना चाहिए, उसको किस दिशा में मोड़ना चाहिए, यह यहाँ स्पष्ट होता है । जनवादी नाटक और नाटककार के बारे में उनका स्पष्ट दृष्टिकोण है - "जनवादी नाटककार को साहित्य की चिंता न कर जन की चिंता करनी है ।"[2] उनके कथनानुसार जनवादी नाटक का धर्म जनता को हंसाना रिझाना नहीं बल्कि उसे समझाना, रास्ता दिखाना और एक होकर समान लक्ष्य की ओर बढ़ना है । इस प्रकार अपने नाटकों के संबंध में और नाटक संबंधी परिकल्पना के बारे में सर्वेश्वर का दृष्टिकोण काफी खुला है ।

जैसा उपर्युक्त सूचित है कि अन्य नाटकों एवं नाटककारों के बारे में भी सर्वेश्वर ने लिखा है । विनोद शर्मा का अनाम घर, मृणाल पांडे का "जो राम रचि राखा उर्फ किस्सा मन्ना सेठ" का, त्रिपुरारी शर्मा का "बहू" जापानी नाटक "द एलीफैंट", भीष्म साहनी का "कबिरा खड़ा बाजार में", भास का "अस्भंगम्" का मणिपुरी भाषा में प्रस्तुतीकरण, इन्द्रपार्थसारथी का तमिल नाटक "और गजेब" और सतीश आलेकर का मराठी नाटक "महानिर्वाण", बृजमोहन शाह का "युद्धमन", मणिमधुकर का "छत्रभंग", कुछ हास्यनाटक लक्ष्मीनारायण लाल का "एक सत्य हरिश्चन्द्र" सुरेन्द्र वर्मा का "सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक", मुद्राराक्षस का "तिलचट्टा", बादल सरकार का "शेष नहीं", मोहन राकेश के तीन लघु नाटक, बलवंत गार्गी का नाटक "सुलतान रज़िया", कन्नड नाटक "हयवदन", हबीब तनवर की "चरण दास चोर" आदि अनेक नाटकों के बारे में सर्वेश्वर ने प्रभावपूर्ण ढंग से लिखा है । कुछ टिप्पणियाँ इस

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ -भाग-3 - पृ.271
1. वही - पृ.273

प्रकार हैं - "कबिरा खडा बाज़ार में" के बारे में उन्होंने लिखा -"लेकिन यह नाटक निराश करता है - आलेख और प्रस्तुति दोनों ही स्तर पर । भीष्म साहनी कबीर के व्यक्तित्व से केवल भावात्मक एकता का मुद्दा खरोंचकर ले आए - शायद इसलिए कि इसकी इस समय देश को ज़रूरत है । लेकिन इस पर भी वे प्रभावशाली नाटक नहीं बना सके । नाटककार के रूप में सबसे बडी गलती जो उन्होंने की वह कबीर को पात्र बनाकर मंच पर लाने की थी ।"[1] इस प्रकार की प्रभावपूर्ण टिप्पणी सर्वेश्वर के अलावा कोई लिख नहीं सकता ।

बाल नाटककार होने के कारण वे बच्चों को अवसर देने और बाल नाटक और रंगमंच को प्रोत्साहन देने के पक्षधर रहे हैं । "मंच और बच्चे", "थोडा सरकिए, बच्चों को जगह दीजिए", "आओ बच्चों नाटक करें", "उमंग और बच्चे", "नन्हा राजकुमार नामक कठपुतली" नाटक आदि पर अपने इस दृष्टिकोण को उन्होंने व्यक्त किया है । जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने बच्चों को रंगकर्म से जोडने के लिए बाल मंच की स्थापना की तब सर्वेश्वर ने बेहद खुश होकर एक टिप्पणी लिखी और वह है "आओ बच्चों नाटक करें ।"

नारी मुक्ति का नाटक, राजनीतिक नाटक, नाटक में लोकरूपों का प्रयोग, नाटक में हास्य की ज़रूरत, नौटंकी शैली आदि विषयों पर भी उन्होंने लिखा है । राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के बारे में, बादल सरकार कार्यशिविर, मोहन राकेश स्मृति समारोह, राष्ट्रीय नाट्य समारोह आदि पर भी प्रभावी टिप्पणियाँ उपलब्ध है । इन सब में उसकी प्रासंगिकता लाभ और खोट पर काफी गहरा विचार प्रस्तुत किया है । इन सभी में उनकी सतर्क दृष्टि व्यक्त हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - स.द.स.संपूर्ण गद्य रचनाएँ -भाग-2 - पृ.295

नाटक संबंधी उनकी इन टिप्पणियों में उनकी रंगमंच संबंधी दृष्टि भी व्यक्त होती है । भाग-3 में साहित्य, नृत्य, संगीत आदि पर अनेक टिप्पणियाँ, कुछ फुटकर लेख और "रूस-यात्रा" का वृत्तांत संकलित हैं ।

हिन्दी साहित्य पर भी नहीं, मगर समस्त भारतीय साहित्य पर सर्वेश्वर की दृष्टि पडी थी । कविता, कहानी, उपन्यास आदि सभी विधाओं पर उन्हें रुचि थी और उन्होंने उन सब पर अनेक टिप्पणियाँ भी लिखी है । जापानी व रूसी कविताओं पर भी उन्होंने लिखा है । मलयालम के साहित्यकार पोट्टेक्काट्ट की कहानियों पर उन्होंने लिखा - "उनकी कहानियाँ पढकर लगता है कि वह आधुनिक कहानी के चक्रवात में नहीं पड़े । घुमावदार रास्तों से न जाकर वह सीधी पगडंडी पकडते हैं और एक किस्सागो की तरह कहानी सुनाते हैं । भाषा और बुनावट में कहानी का आकर्षण उनके यहाँ बडी खूबसूरती से मौजूद हैं । बडे कथाकार वह इसलिए है कि उनकी संवेदना का क्षेत्र सीमित नहीं है, विस्तृत है ।"[1] भारतीय साहित्य के प्रति उनकी विशेष रुचि को द्योतित करने के लिए यह सहायक है ।

अपने सहकर्मी साहित्यकारों की आकस्मिक निधन की झटके को शब्दों में व्यक्त करने का कार्य उन्होंने किया । उनके स्मरण को "स्मरण" में सर्वेश्वर प्रस्तुत करते हैं । करीब बीस स्मरण इस संकलन में संकलित है । मलयज, साही, दिनकर, सुमन, फिराक, देवीशंकर अवस्थी, डब्ल्यू. एच. ऑडेन, बट्रैन्ड रसेल आदि विशेष उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ भाग-3 - पृ. 78

मलयज की मृत्यु के पश्चात् सर्वेश्वर ने लिखा -"एक खामोश, आत्मविज्ञापन से दूर, अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ वह व्यक्ति इस तरह हमेशा के लिए अनुपस्थित हो गया जिसे हम राजधानी की साहित्यिक भीड में खोजते रहते थे, और कभी कभी किसी भीड में अचानक कहीं अलग चुपचाप खडे देख लेते तो खुशी से भर जाते थे । मलयज जी भावुक नहीं थे । तन से भले ही रहे हों पर भीतर से कमज़ोर नहीं थे । संघर्ष की अपार क्षमता उनमें थी । सहृदयता और संवेदना से भरपूर थे । पर किसी का भी वह प्रदर्शन नहीं करते थे । बच्चे, पत्नी, पिता, भाई- सबके होकर जी रहे थे ।"[1] उसी प्रकार राष्ट्रकवि "दददा" की स्मृति में उन्होंने लिखा "गुप्तजी के जीवन काल में हम उन्हें राष्ट्रकवि कहते आए, आज उनकी कैवल्य प्राप्ति के बाद उनकी पहली जन्मतिथि के अवसर पर उन्हें केवल राष्ट्रीयता का कवि न कहकर भारतीयता का कवि कहना अधिक संगत जान पडता है । क्योंकि उनके काव्य में उदारता भी है और मर्यादा प्रेम भी, प्राचीन का गौरव भी है और नए का अभिनन्दन भी, विशाल ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित आस्था भी है और भविष्य के लिए एक संयत आशा भी ।"[2]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्यरचनाएँ -4 में साहित्य, राजनीति, संस्कृति आदि पर लिखी बेबाक टिप्पणियाँ हैं जिन्हें "चरचे और चरखे" नाम से अभिहित किया गया है । ये भ्रष्टाचार, लूटमार, राजनीतिक चालबाज़ियाँ और अन्य सामाजिक विडम्बनाओं पर आधारित है । एक उदाहरण हैं -

इंदिरागांधी की राजनीतिक मान्यता पर व्यंग्य करके सर्वेश्वर ने लिखा "इन्दिराजी मानती है कि उनकी पार्टी का हित ही

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ भाग-3 - पृ. 330
2. वही - पृ. 365

लोकतंत्र है और उनके अतिरिक्त सब लोग लोकतंत्र विरोधी है । भारत का और लोकतंत्र का हित केवल उनके सत्ता में रहने से ही होगा ।"[1] यहाँ सर्वेश्वर की तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त है ।

पत्रिका संपादन

1964 में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने आकाशवाणी की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । 1964 सितंबर को दिल्ली के "दिनमान" में उपसंपादक के रूप में वे नियुक्त हुए । 1964 से तीन वर्ष तक इस पद को संभालने के बाद 1967 में उसके मुख्य उपसंपादक बने । इस पद पर पाँच वर्ष तक रहने के बाद 1982 में "पराग" का संपादन उन्होंने शुरू किया । उनकी संपादकीय टिप्पणियों के कुछ नमूने इस प्रकार है । "मंत्री शरणम गच्छामी" शीर्षक में मंत्रियों की ढोंगी नीति का पर्दाफाश इस प्रकार करते हैं - "स्तंभकार मानता है कि मंत्री यशलोलुप होता है । यह उद्घाटन जैसा कोई भी मौका छोडना नहीं चाहता । बल्कि हमेशा इस प्रतीक्षा में रहता है कि उससे अध्यक्षता या उद्घाटन आदि कराए जाए । क्योंकि इससे वह अखबारों की सुर्खियों में रहेगा और अखबारों की सुर्खी में रहना जनता की निगाह में रहना है और जनता की निगाह में रहने का मतलब है पद पर बने रहना ।"[2]

"सौंदर्य कहाँ है ?" शीर्षक में सर्वेश्वर ने एक सामाजिक प्रतिबद्ध साहित्यकार का भाग अदा किया है । उसमें लडकियों की बदली आवाज़ को यों व्यक्त किया है - "कालेज की लडकियों की "इमेज" अब बदल रही है । वह अब उतनी फैशन की गुडिया नहीं रही जितना कि उसे समझा

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ भाग-4 - पृ. 23
2. वही - पृ. 156

जाता है । वह खुद को बदल रही है और समाज को उसे बदलने में भरपूर योग देना चाहिए । वह लडकों के ही समान है उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर समाज की पुन:प्रतिष्ठा में योग देना चाहती है । यह क्षण उसे अपमानित करने का नहीं बल्कि उसके योग को स्वीकार करने और उसके लिए मार्ग प्रशस्त करने का है ।"[1]

सर्वेश्वर अपनी पत्रिका के हर पहलू को संभालने में दक्ष थे, चाहे स्पोर्ट्स हो या फिल्म संबंधी विषय । राजनीति हो या सामाजिक । वे बडी कुशलता से लोगों तक उस समाचार को पहुँचाते थे ।

संपादक की व्यस्तता उनके लिए हमेशा स्वीकार्य थी । हमेशा शब्दों के बीच रहना वे पसन्द करते थे । इसलिए संपादन का कार्य उन्होंने बडी कुशलता से किया । कवि के रूप में, नाटककार व कथाकार के रूप में जितनी ख्याति उन्होंने प्राप्त की है उतनी ख्याति संभवत: उन्हें संपादक के रूप में हासिल नहीं हुई । 1983 सितंबर 24 को हृदयाघात से उनकी मृत्यु हुई तब वे "पराग" के संपादक थे ।

भारतीय समाज का यथार्थ हमें आसपास की विपन्न स्थितियों से परिचय कराता है । उसे सरसरी दृष्टि से देखने पर कोई विशेष बात नज़र नहीं आ सकती है न कोई ख्यात मुद्दा उभर सकता है । हमारा सामान्य यथार्थ कई जटिल स्थितियों से युक्त है । इनसे सबका साक्षात्कार होता है । रचनाकार का भी होता है । रचनाकार के लिए यह रचना भूमि है । सर्वेश्वर ने यथार्थ को इसी रूप में लिया है । बचपन से उन्होंने इसी

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ -भाग-4 - पृ. 268

यथार्थ का सामना भी किया है । निरंतर संपर्क से सर्वेश्वर से प्रतिरोधी दृष्टि विकसित हुई जिसको उन्होंने कालान्तर में प्रतिबद्ध दृष्टि में परिवर्तित किया है । उसके सामने रचनाकार की भूमिका का सवाल था । रचना की शर्तों को तिलांजली देकर वे रचनाकार की भूमिका पर विचार करने को उद्यत नहीं हुए । दोनों को उन्होंने समन्वित किया । इसलिए उनमें जहाँ वैचारिकता एवं प्रतिक्रिया की प्रखरता दृष्टिगत होती है वहीं रचनात्मक एकाग्रता की तल्लीनता भी मिलती है । यही सर्वेश्वर की सबसे बड़ी देन हैं ।

अध्याय : दो

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता में लोकमानस के भिन्नार्थी संदर्भ

प्रकृति का लोकपक्ष और कविता

हर युग की कविता को प्रकृति ने आकर्षित किया है । संदर्भ एवं कालानुसार प्रकृति के परिदृश्यों को कवियों ने प्रस्तुत किया है । आधुनिक काल में प्रकृति कवियों के लिए एक माध्यम है, जिसकी सहायता से कवि बहुत कुछ कहने में सक्षम हुए हैं । अर्थात् कविता के अंतरंग पक्ष को सृजनात्मक और प्रासंगिक बना पाते हैं । वर्तमान की जटिल सामाजिकता का उद्‌घाटन करने के लिए तथा पारिस्थितिक समस्याओं को प्रक्षेपित करने के लिए प्रकृति ने कविता के मार्ग को काफी हद तक प्रशस्त किया है । इस स्थिति में प्रकृति कविता वस्तु के संदर्भ में लोक दृष्टि की अभिव्यक्ति बन जाती है । नई काव्य प्रवृत्तियों के बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि अब "प्रकृति-काव्य" नहीं के बराबर है । अर्थात् प्रकृति का सामान्य वर्णन प्रथाएँ गंभीर कविता में नहीं रह गयी हैं । पर कविता में प्रकृति का सहज सन्निवेश भी मिलता है । इसे ही लोकमानस की अभिव्यक्ति के रूप में पहचाना गया है ।

छायावादी दौर में प्रकृति के आलंकृत उद्‌दीपन भावों के सहारे मानवीय भावनाओं का चित्रण होता था तो आज "समकालीन मानवीय संवेदना" के बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में प्रकृति विन्यसित है । समकालीन मानवीय संवेदना बहुत दूर तक विज्ञान की आधुनिक प्रवृत्ति और प्रखर बौद्धिक संदर्भ से मर्यादित हुई है । इसलिए यही कहा जा सकता है कि आज का कवि प्रकृति के भिन्नार्थी संदर्भ को समकालीन अवस्था के तहत प्रस्तुत करता है ।

लोकमानस यदि कविता में लबालब भरा दीखता है तो वह प्रकृति के प्रति विशेष आकर्षण के कारण नहीं है । प्राकृतिक परिदृश्य इस संदर्भ में अपने वैभवपूर्ण विन्यास में उभरता नहीं है । कवि उसे जीवन के सूक्ष्मतम यथार्थ और परिवेश के तहत देखना पसन्द करते हैं । नागार्जुन, त्रिलोचन सरीखे कवियों ने इस प्रवृत्ति को विकसित किया था । इसलिए लोकमानस का सीधा संबंध मानवीय स्थितियों से है । मनुष्यकेन्द्री कविता में लोक का यह रचनात्मक संगुंफन है जो अपने में से विकसित होकर एक व्यापक जीवन परिदृश्य को आत्मसात् करता दीखता है । इसलिए लोक-मानस के विन्यसन में कविता उत्तरोत्तर विकसित अवस्था में उपलब्ध होती है । उसके क्षितिज इतने विस्तृत होते हैं कि कविता की आस्वादनीयता बढती रहती है ।

आधुनिक काल में बौद्धिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । उनमें प्रमुख है प्रश्नाकुलता का क्षेत्र और उसका विस्तार । प्रकृति के अंकन के क्षेत्र में भी इस कारण से नए अन्वेषण हुए । समकालीन कविता में प्रकृति कवि मन को मोह में डालनेवाली वस्तु नहीं है । यह प्रवृत्ति वस्तुतः नई कविता के दौर में शुरू हुई थी । उनकी सामाजिक संपृक्ति में प्रकृति विन्यसित हो गयी । इस सृजनात्मक कार्य में सर्वेश्वर की भूमिका रही है । उनकी कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो वस्तुतः प्रकृति पर आधारित है । लेकिन उनकी ऐसी कविताओं का यथार्थ प्रकृति के साथ का ऐसा विलयन है जिससे जीवन, यथार्थ का ऐसा एक ताज़ा संदर्भ है, जो इतना सहज और तल्लीन है । इसे आज की कविता के संदर्भ में लोकमानस का यथार्थ कहा जा सकता है । सर्वेश्वर में प्रकृति का यही स्वरूप प्राप्त होता है ।

नयी कविता में प्रकृति - प्रकृति की सहजता की खोज

नयी कविता समाज संपृक्त व्यक्ति मन के यथार्थ की अभिव्यक्ति है । कवि की वैयक्तिक चेतना जिन जिन अनुभव स्तरों से होकर गुज़री है उसका स्वानुभूत चित्र रूपायित करना इनकी प्रमुख प्रवृत्ति रही है । इन अनुभवों में प्रकृति के लिए भी स्थान था । इसलिए प्रकृति के अंकन नहीं प्रकृति को यथार्थ के साथ ले चलने की प्रवृत्ति विकसित हुई । इसलिए नई कविता में प्रकृति सस्य-श्यामल कोमल मात्र नहीं है । प्राकृतिक उपादानों का वर्णन करके उसके बहाने मानवीय पक्ष को उभारना उनका ध्येय है । उनका उद्देश्य प्रकृति की सहज वृत्तियों के माध्यम से जीवन के सहज पक्ष को ढूँढना रहा है ।

नई कविता में प्रकृति का चित्रण किस किस ढंग से हुआ है और वह चित्रण किन किन मानवीय पक्षों को उभारने के लिए किया गया है इन सबका विश्लेषण करने के लिए नए कवियों की रचना भूमि में से गुज़रना होगा । अज्ञेय, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर, श्रीकान्त वर्मा आदि ऐसे प्रमुख कवि हैं जिन्होंने प्रकृति के माध्यम से अपनी सामाजिक संपृक्ति को शब्दबद्ध किया है ।

अज्ञेय की रचनाओं में शुरू से प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण है, और उनमें उसके जीवन्त चित्र भी प्राप्त होते हैं । कवि की आँख से देखी गयी हर सामान्य चीज़ विशिष्ट हो उठती है । प्रकृति के प्रति अज्ञेय का दृष्टिकोण भी इसके अनुसार हैं । वे हमेशा प्रकृति में मुक्त सुख प्राप्त करना चाहते हैं । उनके लिए प्रकृति सिर्फ प्रकृति नहीं, उससे परे

की चीज़ है । प्राकृतिक वर्णन से ऊपर उठकर एक "इको" विचारधारा को अज्ञेय ने पैदा किया । "बावरा अहेरी" इसका सशक्त दृष्टान्त है । उसमें प्रकृति का सम्यक् प्रयोग हुआ है ।

"भोरे का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है
लाल लाल कनियाँ ।[1]

सूरज का वर्णन कविता में किया गया है लेकिन सूरज के किरणों के विस्तार के माध्यम से यांत्रिक संस्कृति पर बल दिया गया है । सौंदर्य दृष्टि या प्रकृति की सहजता पर पडे कुप्रभाव को दिखाया गया है ।

कलस-तिमुलवाले मन्दिर शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी गोल घुस्सोंवाली
उपयोग सुन्दरी
बेपनाह काया को ।

आधुनिक युग में मानव अपने वातावरण पर बहुत सारे आघात पहुँचाते हैं । परिस्थिति पर आधारित एक विचारधारा का विकास इसी संदर्भ में हुआ । यह सिर्फ प्रकृति प्रेम नहीं है । इसके अनुसार प्रकृति और मनुष्य के बीच में सृजनात्मक संबंध होना चाहिए । धरती, पानी, पौधे ये तीन इस विचारधारा के मानक प्रतीक हैं ।

परिस्थिति सौंदर्य शास्त्र आम आदमी का सौंदर्य शास्त्र है । यह आम आदमी ही प्रकृति कविताओं के मूल में वर्तमान है । शमशेर इस

1,2.अज्ञेय - बावरा अहेरी - पृ. 16

तथ्य से अच्छी तरह अवगत थे । इसलिए दूसरा सप्तक के वक्तव्य में उन्होंने लिखा - "सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है । अब यह हम पर है, खास तौर से कवियों पर कि, हम अपने सामने और चारों ओर की इस उन्मत्त अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं ।"[1] शमशेर प्राय: प्रकृति का वस्तुपरक चित्र प्रस्तुत करते हैं । उसमें अपना अवसाद, पीडा, आकांक्षा, प्रणय भावना सब मिलाते हैं । समाज सत्य के मर्म को अपने में पाना और अपने को उसमें पाना चाहते हैं । मध्यवर्गीय जीवन का सुन्दर चित्र प्रकृति के बहाने प्रस्तुत करते वक्त भी वे यह नहीं भूलते कि इन सब विचारों के मूल में आम आदमी है, उसकी विडम्बना है । इस प्रकार प्रकृति विषयक कविताएँ मानवीय संकटों के दास्तान बन गयीं ।

नागार्जुन लोक जीवन के कवि है । उनके लिए प्रकृति सिर्फ वर्णन की वस्तु नहीं है । "लोक" के माध्यम से एक इकोलजिकल विचारधारा को कवि प्रस्तुत करते हैं । इस परिस्थितिवाद की भाषा प्रतिरोध की भाषा है अतएव उसमें परोक्षत: शोषण और अत्याचार के खिलाफ भी शब्द सक्रियता है । नागार्जुन की कविता इस तथ्य का उत्तम दृष्टांत है ।

साधारण जन और साधारण प्रकृति का साहचर्य केदारनाथ अग्रवाल की काव्य क्षमता का मुख्य स्रोत है । "लोक" का अनुभव प्राप्त करके उसे उन्होंने कविता में उभारा है । मिट्टी को गौरवान्वित करने का अर्थ है साधारण जन को गौरवान्वित करना । मिट्टी से प्रेम करना सामान्य जीवन से प्रेम है । कवि की सहज दृष्टि ने आत्मीय ढंग से प्रकृति के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है । इस दौरान वे विडम्बनाओं के चित्रण के साथ साथ आज की कटु स्थितियों पर भी व्यंग्य करते हैं ।

---

1. शमशेर - वक्तव्य - दूसरा सप्तक - पृ. 80 - द्वितीय सं. 1970

कुंवर नारायण की रचनाओं में भी शुरू से प्रकृति है । केदारनाथ सिंह की खामोशों में प्रकृति के अछूते रूपों का खुलासा है । उसी प्रकार श्रीकान्त वर्मा की कविताओं में भी ग्राम्य परिवेश है, प्रकृति का परिवेश है । मामूली जीवन के चित्र भी प्राकृतिक वर्णन के बीचों-बीच मिल जाते हैं ।

आधुनिक युग में "प्रकृति" को एक निराले ढंग से देखने को रीति कवियों ने शुरू की । प्रकृति कुछ हरियाली, पहाड, नदी, पुष्प, फल आदि न रहकर कुछ ऐसी चीज़ बन गयी जिसमें अकथनीय को भी व्यक्त करने की क्षमता है । इस तथ्य को उजागर करते हुए कवि नरेश मेहता ने लिखा है -

जब भी मैं
फूल, नदी या आकाश पर कविता लिखता हूँ
तो वह मानवीय प्रकरण ही होता है ।
क्योंकि जब भी मनुष्य की आँखों में आँसू होते हैं
मैं ने फूल, नदी, आकाश को रोते देखा हैं
इसलिए मेरे लिए न प्रकृति केवल प्रकृति है
और न मनुष्य केवल मनुष्य ।"[1]

अर्थात् प्रकृति और मनुष्य के बीच का संबंध गहरा है । अपनी तीव्रतर संवेदनाओं को कवियों ने प्रकृति के भावों में गूँथकर और तीव्र बनाया । मनुष्य जिस प्रकृति में अपना जीवनयापन कर रहा है, उसी के

---

1. नरेश मेहता - अरण्या - पृ.46 - प्र.सं. 1985

माध्यम से जीवन की विडम्बनाओं को नए कवियों ने शब्दबद्ध किया है । इसका एक ओर अर्थ यह निकाला जा सकता है कि आज की कविता ने "लोक जीवन" से प्रेरणा ली है । प्रकृति का लोकानुभव आज कविता में मुख्य है ।

प्रकृति का प्रतीकन

प्रतीक अभिव्यंजना की एक सशक्त प्रणाली है । कविता में प्रतीक के माध्यम से कम शब्दों में अधिक से अधिक इच्छित वस्तु को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया जा सकता है । जिन अवधारणाओं और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना असंभव लगता है उसे प्रतीकों के द्वारा संभव बनाया सकता है । प्रतीकों के माध्यम से अपनी बातों को व्यक्त करना आज के कवियों की विशेषता है । सशक्त प्रतीकों के माध्यम से कवि वह सब कुछ कहता है जो उनके मन की छिपी परतों में निहित है । अर्थात् कविता में प्रतीकों के प्रयोग की महत्ता असंदिग्ध है ।

नए कवि इस तथ्य से अवगत हैं कि उनकी विशिष्ट अनुभूति के प्रस्फुटन के लिए सामान्य काव्य भाषा पर्याप्त नहीं है । इसलिए वे प्रतीकों की सहायता लेते हैं । इसी पहचान ने उन्हें प्राकृतिक प्रतीकों का उपयोग करने की प्रेरणा दी । फलस्वरूप प्रकृति नए कवियों के प्रतीकों का मुख्य स्रोत बन गयी । प्रकृति में जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब आज प्रतीक बन चुकी हैं । एक भी वस्तु अमान्य नहीं रह गयी ।

हर एक कवि की प्रतीक व्यवस्था अलग-अलग हुआ करती हैं । अज्ञेय की कविता का प्रिय प्रतीक है "मछली" । अर्थ है अस्तित्व

या जिजीविषा । "हारिल" भी अस्तित्व का प्रतीक है । मुक्ति और जीने की लालसा ही उनके काव्य की सही ज़मीन है । अज्ञेय की कविता "नदी के द्वीप" में नदी समाज का और दीप व्यक्ति का प्रतीक है ।

किन्तु हम है द्वीप
हम धारा नहीं है
स्थिर समर्पण है हमारा । हम सदा से द्वीप है स्रोतस्विनी के ।
किन्तु हम बहते नहीं है । क्योंकि बहना रेत होना है ।[1]

व्यक्ति की अनुभूति नयी कविता के प्रतीकों की मुख्य संप्रेष्य वस्तु है । प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्ति की स्वीकृति और समाज की सापेक्ष स्वीकृति हुई है । शकुन्त माथुर की कविता "गन्दी झील" रूढिग्रस्तता का "चश्मा" व्यक्ति का "ताज़ा नया पानी" नयी चेतना के प्रतीक हैं ।

डुबाता गन्दी झीलें
बढ रहा है
आज यह चश्मा
लिये ताज़ा पानी ।[2]

नरेश मेहता का कवि बार-बार आलोक की आकांक्षा व्यक्त करते हैं । जिस धूप शब्द का प्रयोग वे अपनी कविताओं में बार-बार करते हैं वह ऊर्ध्व का प्रतीक है ।

---

1. अज्ञेय (नदी के द्वीप) - कवि श्री अज्ञेय - सं. सियारामशरण गुप्त - पृ. 26 प्र.सं. 1957
2. शकुन्त माथुर - दूसरा सप्तक - पृ. 48 - द्वि.सं. 1970

धूप
एक संभावित सिम्फनी है
आकाश की
पृथ्वी से आनेवालों के लिए ।[1]

नयी कविता का दौर हर दृष्टि से नयेपन का दौर है । और यह नयापन हर मोड पर दिखाई देता है । प्रतीकों के क्षेत्र में भी यह नयापन दृष्टिगोचर होता है । प्रतीकों का चयन और उपयोग में नवीनता है । इसलिए नरेश मेहता लिखते हैं -

तुम जिसे पेड कहते हो
वह मात्र पेड नहीं है
वह वानस्पतिक श्लोक है
श्लोक ही नहीं बल्कि एक संपूर्ण उपनिषद है ।[2]

प्रकृति को प्रतीकवत् करके नए कवियों ने अपने इच्छित यथार्थ को बखूबी प्रस्तुत किया है । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें अपने इच्छित यथार्थ को व्यक्त करने के लिए प्रकृति की आवश्यकता थी । वस्तुत: उन्होंने प्रकृति को नहीं बल्कि मनुष्य और उसकी सहज जीवन स्थितियों के साथ मिली हुई उन प्राकृतिक अवस्थाओं का सहारा ही लिया था । इसलिए इस दौर की कविताओं में प्रकृति का कोई मोहक चित्र नहीं बल्कि इन प्रकृति प्रतीकों से "लोक" का विन्यास ही प्राप्त होता है । यह लोक परिदृश्य नयी कविता और परवर्ती कविता की वास्तविक रचना भूमि के रूप में विकसित होता है ।

---

1. नरेश मेहता - बोलने दो चीड को - पृ. 52 - प्र.सं. 1993
2. नरेश मेहता - उत्सवा - पृ. 57 - प्र.सं. 1979

सर्वेश्वर की कविताओं में लोक परिदृश्य

सर्वेश्वर की कविता-यात्रा के दो पड़ाव हैं । एक नयी कविता का है तो दूसरा समकालीन कविता का । नयी कविता में जितने कवि अपनी प्रखर रचनात्मकता के कारण समकालीन कविता के साथ जुड गये उनमें सर्वेश्वर का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इसका प्रमुख कारण उसकी जीवन संपृक्ति ही है, जिसमें उनकी इस लोक-संपृक्ति की भावनाओं को देख लेना चाहिए ।

बर्फ की एक सिल मेरे ऊपर
बर्फ की एक सिल मेरे नीचे
बर्फ की एक सिल मेरे दायें
बर्फ की एक सिल मेरे बायें
लेकिन जाने कैसी यह आग है
जो बुझती नहीं है ।[1]

चारों ओर बर्फ से घिरे रहने के बावजूद न बुझनेवाली आग की लपेटों से ग्रस्त स्थिति को सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने प्रस्तुत किया है । तीसरा सप्तक की कविताओं से शुरू होकर उनकी अंतिम कविता तक की यात्रा में लोक जीवन से उनका लगाव स्पष्ट है । लोकजीवन के प्रति उनका कोई विशेष आग्रह नहीं बल्कि लोकजीवन उनकी कविता का अंग है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म उत्तरप्रदेश के बस्ती में हुआ । ग्रामीण संस्कृति में पलने के कारण उनके सृजन में प्रकृति अनेक रूपों व

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 8 - प्र. 1973

छवियों में दिखाई देती है । कविता में लोक संस्कृति और लोक-संपृक्ति की स्थितियों को उन्होंने बारीकी से पिरोया है ।

महानगर के कोलाहलमय वातावरण और शहरी सभ्यता ने उन्हें संकट में डाल दिया है । यह व्यथा उनके सृजन में भी मौजूद है । वास्तव में सर्वेश्वर में गंवई संवेदना के संस्कार इतने प्रबल थे कि वे उसी संस्कार के रचनाकार रहे हैं । ग्रामीण युवा का मौजभरा, लापरवाहीवाला, जोखिम झेलनेवाला अल्हडपन उनके रचनाकार में हमेशा दृष्टिगोचर होते हैं । ग्रामीण संस्कारों में वे ग्रामीणों से तादात्म्य स्थापित करने में सफल रहे हैं । खुद सर्वेश्वर ने लिखा - "कस्बेनुमा छोटे से शहर के बाहर, चारों तरफ दूर तक फैले हुए खेतों तालों और छोटे गाँवों के बीच बचपन बीता जिसमें खेतों की भेड़ों, घर के आसपास अनाथाश्रम के बच्चों के अलावा आर्थिक संकट से उत्पन्न पारिवारिक कलह भी बचपन का साथी रहा ।"[1]

प्रकृति की सन्निधरता व्यक्ति को विशेष दृष्टि देने में सहायक है । रचनाकार को वह अतिरिक्त ढंग से प्रकाशित करती है । यहाँ प्रभाव पर विचार करना मात्र संगत मालूम होता है । आत्ममुग्ध दृष्टि भी प्रकृति के प्रति संभव है । लेकिन जहाँ तक सर्वेश्वर का संबंध है वे प्रकृति के "लोक-भाव" में प्रेरित कवि हैं । ऐसी प्रकृति जिसमें जीवन की समग्रता का बोध हो, उनकी कविताओं में अलग अलग संदर्भ में चर्चित हो रही है । "इस जंगल में" शीर्षक कविता इस प्रकार है -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ. 206 - प्र. सं. 1959.

सूरज मेरे सिर पर
पैर रखता चला जाता है
चिड़ियाँ शोर करती
मुझमें से गुज़र जाती है ।
मेरी न अपनी कोई गति है न भाषा
हवा झकझोरती है, तोड़ती है
टूटने से ही अब मेरी होती है पहचान ।[1]

सर्वेश्वर की कविता में जो पीड़ा, अवसाद और अकेलापन है वह निजी भी है परिवेशजन्य भी । यहाँ निज की पहचान हुई है और यह निजी पहचान लोक जीवन के अंकन में से उभरती है । "काठ की घंटियों" से लेकर "खूँटियों पर टँगे लोग" तक की कविताओं में लोक जीवन के प्रति उनका लगाव दिखाई देता है ।

आज "जंगल" कुछ धुएँ या कोयले या चूल्हे में जलती लकड़ी में तब्दील हो चुकी है । अरसों पहले यह कितना संपूर्ण और वैभवसंपन्न था । जंगल की वैभवयुक्त स्थिति व्यक्ति की भी है लेकिन आज -

जंगल की याद
अब उन कुल्हाड़ियों की याद रह गयी है ।
जो मुझ पर चली थीं ।
उन आरों की जिन्होंने
मेरे टुकड़े-टुकड़े किये थे
मेरी संपूर्णता मुझसे छीन ली थी ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 129 - प्र.सं. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 13 - प्र.सं. 1982.

यहाँ कवि ने महानगरीय सभ्यता की बढ़ती विकरालता को दर्शाया है ।

सर्वेश्वर की ग्रामगीतों की तर्ज पर लिखी गयी कविताएँ सामाजिक यथार्थ को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने में समर्थ हुई हैं । केवल ग्रामीण शब्द या धुन का प्रयोग मात्र करने से कविता सक्षम नहीं होती है । सर्वेश्वर इस तथ्य से पूरी तरह से अवगत हैं । इसलिए वे गाँव की मिट्टी का, धूप का, पानी का, हवा का स्पर्श अपनी कविताओं द्वारा कराते हैं । सर्वेश्वर के अंतर्मन में गाँव गहरे बैठा है और अचानक वह प्रकट भी होता है ।

"भुजैनियाँ का पोखरा" ग्राम गीतों की धुन एवं गाँव की धड़कन को संजोयी हुई कविता है । एक लोक कथा को केन्द्र बनाकर यह कविता रची गयी है । चालीस साल पहले उस पोखरे में भुजइन डूबकर मर गयी थी । लेकिन सच्चाई यह है कि आज हर एक गाँव में अनेक भुजइन ज़िन्दा है और पोखरे भी है । पसीने से चिपचिपा देह लिए खामोश बैठकर अपनी भाग्य को जोड़ने-वाली भुजईन आज की गरीबी का प्रतीक है । भारत के करोड़ों आम जनता की ज़िन्दगी कितना दर्दनाक है, बेबस है । न चाहकर भी उन्हें और उनके बच्चों को जीवन की इस कटुता को झेलना पड़ता है ।

उसके अधनंगे बच्चे
भाड़ झोंकने के लिए
दिन भर सूखी बत्तियाँ बटोरते हैं
और शाम को मक्के की रोटी
और नरई का साग अगोरते हैं
साग के पोपले डंठलों में
साँप के बच्चे होने का भय
खाने के साथ एक उदास संगीत सा
उनके दिलों में बजता रहता हैं ।[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ.47 - प्र.सं. 1973.

यहाँ तक कि अपने मन के विद्रोही चेतना को, क्रांति के बीज को दर्शाने के लिए भी कभी कभी प्रकृति का सहारा लिया जाता है । सर्वेश्वर क्रांति की आग को हमेशा कायम रखने का पक्षधर हैं । इसी भाव भूमि को उन्होंने अन्यत्र यों प्रस्तुत किया है ।

हम तो ज़मीन ही तैयार कर पायेंगे
क्रांतिबीज बोने कुछ विरले ही आयेंगे ।
हरा भरा वही करेंगे मेरे श्रम को
सिलसिला मिलेगा आगे मेरे क्रम को ।[1]

विद्रोह और क्रांति की वैचारिक स्थिति को भी सर्वेश्वर लोक परिदृश्य में प्रस्तुत कर रहे हैं ।

सर्वेश्वर ग्राम जीवन की उपेक्षाओं का, अभावों का, तकलीफों का चित्रण भी करते हैं । इससे स्पष्ट है कि सर्वेश्वर का ग्रामजीवन न सबके मन को मोहित करता है न वह धरती का स्वर्ग है । सर्वेश्वर की कविता में जहाँ भी मामूली आदमी की पीडा व्यक्त है, वह प्रायः ग्रामीण परिवेश में सांस लेता आदमी है ।

ज़िन्दगी को अर्थ देने के चक्कर में
वह व्यर्थ हो गया है
मन्दिरों में झाड़ू लगाते
और कीर्तन सभाओं की दरियाँ बिछाते बिछाते
वह किसी भी काम के लिए असमर्थ हो गया है ।[2]

यहाँ कवि के सामने मौजूद आम आदमी का परिचय "वसंत" से करवाकर कवि ने एक विलक्षण बात को प्रस्तुत किया है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 18 - प्र.सं. 1982
2. सर्वेयवरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 164 - प्र.सं. 1978

सर्वेश्वर का सामाजिक यथार्थ गाँव की दुर्दशा का, गरीबी का यथातथ्य वर्णन करता है । गाँव के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ भयावह स्थितियों को उजागर करने में सर्वेश्वर समर्थ हैं । सर्वेश्वर की कविताओं का युगबोध सामयिक संदर्भों को समेटकर पूरे यथार्थ के साथ उभरता है । "सुहागिन का गीत" ग्राम्य जीवन की लघुतम इकाई को व्यक्त करनेवाली कविता है । लोक जीवन का एक सीधा चित्र इस कविता में है । एक सुहागिन की मानसिकता को लोक जीवन की बारीकियों से बाँधकर कवि ने प्रस्तुत किया है । वह अनुमति माँगती है कि "मुझे यह करने दो, मुझे वह करने दो" आदि । सुहागिन के मन में अनेक आशाएँ हैं, अभिलाषाएँ हैं, लेकिन वहाँ भी आशंका की कालिमा है । उसको छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न करने के बजाय वह खुलकर कहती है -

बेले की पहले ये कलियाँ खिल जाने दो
कल का उत्तर पहले इनसे मिल जाने दो
तुम क्या जानो यह किन प्रश्नों की गाँठ पडी ?[1]

सर्वेश्वर की अपनी एक खासियत है, समसामयिकता के दायित्व और जनजीवन से लगाव । इन दोनों को वे ग्राम्य प्रकृति के चित्रों के साथ गूँथकर प्रस्तुत करते हैं । लोक संपृक्ति और जनजीवन के चित्र एकसाथ उभरते हैं । "गाँव की शाम का सफर में" कवि ने एक ऐसी उलझन को ही प्रस्तुत किया है जो प्रकृति के बहाने व्यक्त होती है । पीली पीली आँधी के साथ सन्ध्या झुकने लगती है, थके हुए आँखों के सामने केवल सोया हुआ जल ही दिखाई देने लगता है । अंधे-काले दरबों में रोशनी झलकती है और भीतर का धुआँ गुमसुम उठकर बाहर दरवाज़े पर पहरा देने लगता है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घुटियाँ - पृ. 272 - प्र.सं. 1959

मन की अन्दरूनी परतों से जब कुंठा, आकांक्षा और विह्वलता का धुआँ निकलने लगता है तब रोशनी भी अंधी लगनी लगती है । इसी सन्ध्या में -

सर पर गट्ठर, लपके तेज़ कदम
झुका पलक चौपायों के पीछे
कोई घायल मन सहला सहला
भूले गीतों को दोहराता है ।[1]

अवसाद भी सर्वेश्वर के यहाँ लोकजीवन के चित्रों से भरा पडा है ।

राजनीतिक विसंगतियों को प्रकाश में लाने के लिए भी लोकपक्ष को उन्होंने माध्यम बनाया है । मिट्टी से जुडी हर बात को वे उसके लोकसन्दर्भ में देखते हैं । जन-भावनाओं को उभारना और उसे खौलते दिखलाना एवं ठंड होते दर्शाना कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है ।

मैं जानता हूँ मेरे दोस्त
हमारा-तुम्हारा और सबका गुस्सा
जंगली सुअर की तरह तेज़ी से
सीधे दौडता हुआ निकल जाएगा
और उस शिकार का कुछ नहीं बिगाड पाएगा
जो पैंतरा बदल लेता है ।[2]

कविता की वस्तु में लोकभाव की गुंजाइश बिलकुल नहीं है । लेकिन सर्वेश्वर का ग्रामीण-बोध उन्हें एक चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करता है । जिसमें सुअर के सामने शिकार की पैंतरेबाज़ी काफी महत्वपूर्ण है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 315 - प्र. सं. 1959
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ -2 - प्र. 99 - प्र. सं. 1978

मिट्टी से जुडे हुए इस चित्र का लोकभाव राजनीतिक विडम्बना से मिल लेता है और एक विशेष अर्थध्वनि और बोध प्रदान कराता है ।

सर्वेश्वर की प्रेमपरक कविताओं में भी प्रकृति उसकी अपनी अलग अस्मिता के साथ प्रतिबिम्बित होती है । प्रकृति हमेशा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा अनकहे बातों को बखुबी प्रश्रय मिलता है । चेहरे पर कहीं खोया उस चुम्बन का स्मरण कवि को प्यार का सुखद स्पर्श तो प्रदान करता है । लेकिन सच्चाई यह है कि वह चुम्बन चेहरे पर कहीं खो गया है लेकिन उसका ऐसा एहसास कवि करता है कि

गालों पर दहकती
वह आग
कोंपलों की अब कहाँ है ?
पुराने पत्ते ओढकर
धुआँ सो गया है ।[1]

उसी प्रकार "वे हाथ" में भी सर्वेश्वर काफी भावुक दीख पड़ते हैं । उन हाथों को मेरे अश्रु पोंछने की फुरसत नहीं है लेकिन सुबह से शाम तक धुल साफ करते, सब्जी छीलते, अंगीठी सुलगाते रोटी सेंकते, बच्चों का काम करते "वे हाथ" व्यस्त रहते हैं । उन हाथों की नीली नसों में कवि ने हीरे की झिलमिलाती चमक को देखा है और आगे वे लिखते हैं -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - प।. 148 - प्र.सं. 1978

बड़ी से बड़ी मुसीबत को
सितार की तरह गोद में रख
मैं ने उन हाथों की उंगलियों को
तेज़ी से चलते देखा है
और संघर्ष को
उस संगीत के नशे में
आधा बेहोश बैठ पाया है ।[1]

सर्वेश्वर की कविता युगीन संदर्भों और राष्ट्रघात हलचलों का पूरा मुआयना करती हुई एक समीकरण सिखलाती है । और यह तथ्य उनकी प्रकृति कविताओं में साफ दृष्टिगत होता है ।

लोक संकेतों में निहित मानवीय पक्ष

"तीसरा सप्तक" के वक्तव्य में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने लिखा है - "यह माना गया होता कि संसार का कोई भी विषय कविता का विषय है और कवि की दृष्टि इतनी व्यापक होनी चाहिए कि वह उसे उस कोण से भी देख सके जहाँ से वह संवेदना को छुता हो, यह सत्य स्वीकार कर लिया जाता है कि भावनाओं की नई परतें खोलने के और संवेदना के गहनतम स्तरों को छुने के लिए कविता ने सदैव नये रूपविधान धारण किये हैं ।"[2]

सर्वेश्वर की लोक दृष्टि से कविताओं के मूल में भी इसी विचारधारा का ही प्रवाह है । उनकी तथाकथित कविताओं में मानवीय

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 152 - प्र.सं. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ. 206 - प्र.सं. 1959

त्रासदी, विह्वलताएँ, खतरों के निशान आदि वर्तमान हैं । प्रकृति का अपना स्वत्व है । इस बात को प्रत्येक कवि स्वीकार करता हैं । और वह इस सत्य से पूरी तरह से आकृष्ट भी है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का कवि मन लोक परिदृश्य के नाज़ुक सी नाज़ुक परतों के साथ मानवीय संपृक्ति को पिरोकर प्रस्तुत करने का एक नया प्रयास करता है । लोक यहाँ अनुभवों के पहले का अनुभव पुंज है । उसके साथ कवि का पूरा तालमेल हो गया है । नए अनुभव अब इसके ज़रिए धीरे धीरे विवृत होने लगते हैं ।

पहली बार जो अनुभव होता है, वह निराला होता है । जब हमें अकेलापन सताता है तब हमारे मन में एक सहारे की इच्छा होती है । यह स्वाभाविक है । हमारे दु:ख को अपना दु:ख बनाकर उसे एक सीमित दायरे से बाहर लाने के लिए अगर कोई हैं तो हम बहुत सुकून हाज़िल करेंगे । "आज पहली बार" नामक कविता में सर्वेश्वर भी इसी बात को प्रस्तुत करता है ।

आज पहली बार
थकी शीतल हवा ने
शीश मेरा उठाकर
चुपचाप अपनी गोद में रखा ।[1]

थकी शीतल हवा को यों कहकर आश्वासन देना - मैं भी भटकी हूँ, अटकी हूँ मैं भी अकेला हूँ, एक एकान्त व्यक्ति का विलाप है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 308 - प्र.सं. 1959

अकेलापन कितना भीषण है, विकराल है यह वही जान सकता है जिसे उसका एहसास हो । कवि को ऐसा लगता है कि किसी ने उसको स्वावलंबी बनाया और उसके दु:ख को उससे बढ़ा कर दिया है । यहाँ एक बात साफ जाहिर हो जाती है कि दु:ख की व्यक्तिगत सीमा को पार करने के लिए एक सहारे की ज़रूरत है । दु:ख की वैयक्तिकता को सामाजिकता में बदलकर कवि यह कहना चाहता है कि जिसे कोई गति या इति नहीं है, भटकी है, वह भी सहारा दे सकता है । कवि एक बात पर ज़ोर देता है कि अकेला होने के कारण हवा अकेली नहीं है । व्यक्ति का व्यक्ति के रूप में भी सामाजिक है । यहाँ पर सर्वेश्वर का सामाजिक दृष्टिकोण पर बल है । दर्द की, पीडा की, अवसाद की सीमा को या यों कहे उस छोटे से दायरे को विस्तृत बनाकर एक सामाजिक प्राणी बनने के लिए वैयक्तिकता से ऊपर उठना होगा । लेकिन जीवन के हर मोड पर व्यक्ति अकेला है इसलिए कवि शीतल हवा के माध्यम से कहता है ।

नहीं कोई था
इसी से सब हो गये मेरे
मैं स्वयं को बाँटती ही फिरी
किसी ने मुझको नहीं यति दी ।[1]

"सुबह हुई" या "सुबह से शाम तक" शीर्षक कविता प्रथम वाचन के अवसर पर कवि के प्रकृति निरीक्षण का उदाहरण सा प्रतीत हो सकता है । लेकिन वास्तव में वह ऐसी नहीं है । मटर से खेलते गोरैया सुबह की एक मोहकता है । शाम का चित्र भी कवि इसमें पिरोता है । बादलों के बड़े-बड़े दृश्यों को कवि ऊँटों के रूप में प्रस्तुत करते हैं । सुबह के चित्र में मटर को अपने सूर्ख चोंच के अन्तर डालने के प्रयत्न में निहित निरीह सी लगनेवाली

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 308 - प्र. सं. 1959

भुभुक्षा को शाम के वस्तु विन्यास में बदलते हुए कवि ने देखा है । मिट्टी में पैर रखते ही जीवन संघर्ष के दलदल में फँसने की त्रासदी को कवि ने प्रस्तुत किया है ।

सुबह से शाम तक में
निज का प्रयत्न परवशता में बदल गया
पेट इतना बढ गया
कि उसकी ही चिन्ता में
सामने का चारा पीठ पर लादना पडा
आप इसे प्रगति कहे
मेरे लिए
स्वावलंबी गोरैया का बच्चा ऊँट हो गया ।

"नए साल पर" नामक कविता सामान्य अर्थ में प्रकृतिवर्णन की कविता है । लेकिन उसमें वर्णित प्राकृतिक उपादानों पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से पता चलता है कि वह महज एक प्रकृति कविता नहीं है । जीवन की गहनतम स्थितियों से जोडकर कवि ने इसको प्रस्तुत किया है । सबको नए साल की शुभकामनाएँ कवि देता है । प्राकृतिक उपादानों का उपयोग किस कदर मानव कर रहा है इसका वर्णन भी इस कविता में निहित है ।

इस पकती रोटी को, बच्चों के शोर को
चौके की गुनगुन को, चूल्हे की भोर को
नए साल की शुभकामनाएँ
वीराने जंगल को, तारों को, रात को
ठंडी दो बन्दूकों में घर की बात को
नए साल की शुभकामनाएँ ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 380 - प्र. सं. 1959
2. वही - पृ. 342

लोक जीवन का एक मोहक चित्र इस कविता में है । एक सुहागिन की मानसिकता को लोक जीवन की बारीकियों से बाँधकर कवि ने प्रस्तुत किया है ।

कुछ कविताएँ सर्वेश्वर ने पूरी तरह से ग्रामीण गीतों की तर्ज पर लिखी है । "सावन का गीत", "बनजारे का गीत", "चरवाहों का युगल गान", "झूले का गीत" आदि इस कोटि में आते हैं । इन कविताओं में "लोक" की छवि स्पष्ट झलकती है । इन कविताओं में केवल ग्रामीण शब्दों-मुहावरों का इस्तेमाल मात्र नहीं है, बल्कि गाँव की मिट्टी, पानी, धूप, हवा आदि को पाठक तक पहुँचाने की एक सशक्त और सफल कोशिश है । सर्वेश्वर के अन्तर्मन में "गाँव" का जो बिम्ब है, वह उनकी कविता के भिन्नार्थी संदर्भों में प्रकट होता रहता है ।

"झूले का गीत" में कवि अपने अन्तर्मन के गाँव को इस प्रकार प्रकट करते हैं -

दिशा दिशा कजरी बन झूमूँ
पात पात पुरवा बन घूमूँ
हरियाली को इन्द्रधनुष की जयमाला पहनाऊँ रे
धरती डोलूँ अम्बर डोलूँ हाथ न उनके आऊँ रे ।[1]

इसी प्रकार सर्वेश्वर ने सावन के आगमन को लोक संदर्भ के साथ इस तरह जोडा है -

दादुर मोर पपीहा बोले
बोले आँचल धानी रे

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 350 - प्र.सं. 1959

खन-खन खन-खन चुरियाँ बोले
रिमझिम रिमझिम पानी रे
डाल-डाल पर पात-पात पर कोइलिया बौराई रे
नीम की निबौली पक्की, सावन की ऋतु आयी रे ।[1]

"बनजारे का गीत" में बेकार मानी जानेवाली बनजारों की दयनीय स्थिति का पर्दाफाश करते हैं । उनके हिसाब में न छत है न धन संपत्ति । खुला आसमान और नदी, तट, फूल, फल आदि उनकी संपत्ति है । वे कहते हैं -

चाँद और तारों की छत है
दिशा दिशा दीवार है
सारी धरती मेरा आँगन
पूरब-पश्चिम द्वार है ।"[2]

यहाँ उनकी अभावग्रस्तता का पूरा पूरा चित्र हमारे सामने उभरते हैं ।

"एक सूनी नाव" सर्वेश्वर की उदात्त कविताओं का एक संकलन है । हिन्दी कविता की संवेदना का जो नैरन्तर्य है सर्वेश्वर ने उसे आगे बढ़ाया । प्रकृति का जो सरल विन्यास है उसे प्रस्तुत करके उक्त विन्यास में से एक आन्तरिक विन्यास को ढूँढने की रचनात्मक प्रक्रिया के वे पक्षधर हैं । इसलिए प्रकृति के प्रसंग में भी, प्रकृति की मोहकता के क्षितिज के उस पार झुलसते जीवन का खुरदरा या भावुक पक्ष भी उनसे प्राप्त होता है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 349 - प्र. सं. 1959
2. वही - पृ. 343

"समर्पण" नामक कविता में घास की एक पत्ती के सामने झुकने के बाद कवि अपने को आकाश को छूनेवाला मानकर महनीयता व्यक्त करता है । यहाँ कवि विनम्रता का, प्यार का एक भाव पेश करते हैं । अगर हम प्यार से एक छोटी सी वस्तु के आगे भी झुकने के लिए तैयार हैं तो, वहाँ गुलामी की भावना नहीं बल्कि आत्मसमर्पण का भाव, व्यक्ति को और अधिक गौरवशाली बना देता है । इस महान भाव को सर्वेश्वर ने घास के पत्ती और आकाश के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

घास की एक पत्ती के सम्मुख
मैं झुक गया
और मैं ने पाया कि
मैं आकाश छू रहा हूँ ।[1]

"वसन्त राग" में कवि "यह मौसम अब नहीं आएगा फिर" कहकर हमें चेतावनी देते हैं, हमें सजग करते हैं । पेड हिलते हैं हमारा सिर भी यानी हमारी ज़िन्दगी भी हिलती है, और जिस प्रकार तरु स्वीकारता है कि अब जो मौसम वर्तमान है वह फिर नहीं आएगा उसी प्रकार जीवन भी यह मान लेता है फिर कभी भी ऐसा एक दिन, ऐसा एक माहौल नहीं आएगा ।

पेडों के साथ साथ
हिलता है सिर
वह मौसम अब नहीं
आयेगा फिर ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 21 - प्र.सं. 1959
2. वही - पृ. 23

"रात में वर्षा" सर्वेश्वर की एक ऐसी कविता है, जिसमें व्यक्ति और समाज को एक विभिन्न दृष्टिकोण से देखने की कोशिश की गयी है । कवि के सीमित दायरे में यह धरती भी सिमटने लगती है इसलिए कवि कहता है कि सासों पर मेघ उतर रहा है, आकाश पलकों पर झुक आया है और क्षितिज मेरी भुजाओं पर टकराता है । और कवि यह भी कह देता है कि ज़रूर रात में वर्षा होगी, तुम कहाँ हो ? यहाँ "वर्षा" दो स्थितियों का प्रतीक है एक प्यार का, दूसरा सामाजिक परिवर्तन का ।

मेरी सासों पर मेघ उतरने लगे हैं
आकाश पलकों पर झुक आया हैं
क्षितिज मेरी भुजाओं से टकराता है
आज रात वर्षा होगी
कहाँ हो तुम ?[1]

फिर कवि एक कल्पना लोक का निर्माण करते हैं । आकाश में बादलों के ऊपर शीशे का एक्वेरियम लबालब भरकर कवि ने बनाया है और उसमें रंगबिरंगे मछलियाँ भी हैं । कवि को यह भी मालूम है कि आज रात वह एक्वेरियम टूटेगा और मछलियाँ गिरेगी । और तुम कहाँ हो ? "शीशे" का प्रयोग कवि ने जान बूझकर ही किया है । वह अब टूटेगा इसकी कोई पता नहीं चाहे प्यार हो या सामाजिक प्रतिबद्धता हो ।

ऐसा न हो
कि कल सुबह
टूटे शीशों और मरी मछलियों के बीच
भीगी धरती पर
बडी होकर तुम पूछो
क्या रात में वर्षा हुई थी ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 24
2. वही - पृ. 25

दूसरे प्रसंग में अपने हृदय को प्रस्तुत करके प्रेम पाने की इच्छा ने उन्हें अपने को लुटाने की प्रेरणा दी । कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता और प्रेमी मन यहाँ अनावृत होता है और कवि आगे कहता है -

रात में यह वर्षा
मैं तुम्हें देना चाहता हूँ ।[1]

"वसन्त" प्रकृति की एक सर्जनात्मक प्रक्रिया के स्रोत है । "वसन्त" प्रकृति की एक मनोरम अवस्था भी है । प्रकृति "वसंत" को और वसन्त प्रकृति को एक दूसरे के समीप मानता है । "वसन्तराग-1" और "वसन्तराग-2" में कवि ने प्रकृति और वसन्त की इस निकटता को, मानव जीवन पर उसके प्रभाव को व्यक्त किया गया है । हर साल नियमित रूप से आकर वसंत अपने को पूर्ण रूप से अनुशासित रखता है और अनुशासन सिखाता है ।

हर साल वसंत आता है और नए पत्तों की डायरी पर एक मोहक प्रणय कथा लिखना शुरू करता है और हर साल झरते पत्तों में उसकी व्यथा हम देखते हैं । हर एक जीवन में वसंत आता है तब उसके पन्नों में प्रणय कहानी की मधुरिमा झलकने लगती है । लेकिन यह मोहकता क्षणिक है और पत्ते झरने लगते हैं । यानी समय जब बीत जाता है तब मधुरिमा मिटती है, तो एक व्यथा सी छा जाती है । जब हम कुछ पा लेते हैं, तब खुशी ही खुशी हैं। जब उसका रंग मिटता है, फीका पड जाता है तब एक व्यथा, एक टीस हमें घेरने लगता है । इस बात को सर्वेश्वर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 25

हर साल वसंत
नए पत्तों की डायरी पर
शुरू करता है लिखना
एक प्रणय कथा
पर हर साल
झरते पत्तों में
दीख जाती है
उसकी व्यथा ।[1]

वसंत के प्रेमपत्र में तितलियाँ अपने रंग बिरंगे पंख फैलाकर उड रही है । यह वसंतकालीन प्रकृति का मोहक चित्र है । हमारी इच्छाएँ और तृष्णाएँ तितलियों की तरह उड़ रही हैं । हमारी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ एक प्रेम कथा की मोहकता से फैली है । मानव मन हमेशा किसी न किसी चीज़ को प्राप्त करना चाहता है और यह हमेशा बिना डोर के उडते रहते हैं । कवि ने मानव मन की इस अवस्था को उद्यान में उडती तितलियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

उद्यान में
उड़ रही हैं तितलियाँ
वसंत के प्रेमपत्र ।[2]

कुआनो नदी सर्वेश्वर की बहुचर्चित कविता है । इन कविताओं में एक तरफ पूरे सामाजिक विन्यास को सर्वेश्वर ने प्रस्तुत किया है साथ ही साथ लोक जीवन के चित्रण को भी उन्होंने इसके साथ मिलाया ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 85 - प्र.सं. 1976
2. वही - पृ. 86 - प्र.सं. 1976

इस अर्थ में ये कविताएँ हिन्दी की सशक्त लोक संपृक्ति वाली कविताएँ हैं ।

"कुआनो नदी के पार" में देश में चारों ओर फैली हिंसा का चित्रण सर्वेश्वर ने किया है । देश में व्याप्त विकराल अवस्था का सही दस्तावेज़ दिल्ली दे सकता है । इसलिए कवि दिल्ली का जिक्र बार-बार करता है । इस देश में जहाँ पूँजीवादी लोग अपनी जडें जमा रहे हैं, देश और आम जनता की ख़ून चूस रहे हैं, वहाँ कुछ भी हो सकता है । निम्न-मध्य वर्ग अपनी अवरुद्ध अवस्था में है, उससे ऊपर नहीं उठ रहे हैं । ठंड के मारे जिस प्रकार पेड पर बैठी चिड़िया बेमौत मारी जाती है उसी प्रकार आदमी भी ठंड में ठिठुरकर मर जाते हैं । जैसे -

धरती को फोडकर
ईश्वर के हाथ की तरह
वृक्ष खडे है मुँह लटकाए भावहीन
जिनके नीचे उस आदमी की लाश पड़ी है
जो कल सडक पर ठंड से मर गया ।[1]

जिस संकट से हमारा देश गुज़र रहा है और व्यवस्था, अशिक्षित तनमन से कमज़ोर जातपांत, संप्रदाय, क्षेत्रीयता से ग्रस्त जनता के असंतोष को जिस तरह से गोली, लाठी, अश्रुगैस से दबा रही है, वैसी स्थिति में कविता लिखना उतना सुखद कार्य नहीं है लेकिन सच्चाई यही है कि समाज से प्रतिबद्ध कवि कभी भी इससे मुँह नहीं मोड़ सकता । सर्वेश्वर भी इससे अलग नहीं है, इसलिए सर्वेश्वर इतना ही कह देते हैं -

क्या कोई यहाँ ज़िन्दा है ?
मैं न घृणा करता हूँ

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 24

न प्यार । केवल समझना चाहता हूँ
धूप में झिलमिलाती पत्ती की चिकनई को
या बर्फ में पड़े फूल के रंग को ।[1]

सर्वेश्वर की जीवन-संदर्भी कविताएँ लोक संदर्भी कविताओं में तुरंत परिणत होती हैं ।

"कुआनो नदी - खतरे के निशान पर" में हिंसा का जवाब हिंसा से देने के लिए उद्वेलित जनमानस का चित्रण है । यह उद्वेलन भी सर्वेश्वर ने कुआनो नदी के माध्यम से प्रस्तुत किया है । देश में व्याप्त हिंसा का जवाब उसी तरह देने के लिए देश के युवा क्रांति की प्रतीक्षा में हैं । वे कुछ भी करने को तैयार हैं । इस सामाजिक परिवर्तन को कवि ने "पानी" के उतार-चढाव के माध्यम से प्रस्तुत किया है । नदी में बाढ आने का जिक्र कवि ने बार-बार किया है । यह बाढ तो प्रतीक है । जो आन्दोलन जनमानस में हो रहा है उसकी प्रतीक है । सर्वेश्वर की पंक्तियाँ इस प्रकार है-

पानी चढ रहा है
खून खौल रहा है
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान ।[2]

देश की जेलों पर हज़ारों युवक कैद हैं और इन पर आरोप है कि इन्होंने हिंसात्मक क्रांति के द्वारा व्यवस्था को उलटना चाहा । इसी आरोप पर कितने युवक मौत के खाट उतार चुके हैं । उच्चवर्ग तथा निम्नवर्ग के बीच की इस होड में मध्यवर्ग शामिल नहीं है । मगर वे दुविधा

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 27
2. वही - पृ. 30

में है । क्रांतिकारियों का साथ देना चाहिए या नहीं ।

मुझमें अभी भी
बहुत कुछ बचा लेने का मोह है
और नदी को सब कुछ तोडने का जोश ।[1]

नदी, वायु, पानी का उतार चढाव आदि उनके लोक जीवन से प्राप्त प्रतीक है । जिसका उन्होंने यथासंभव उपयोग किया है जिससे उनकी कविता का अंतरंग काफ़ी गहरा हो गया है ।

"गोबरैले" भी इसी कोटि की कविता है । कवि हमें चेतावनी देते हैं कि चारों तरफ गोबरैले फैल गए हैं, और वे बढ रहे हैं आत्म-विश्वास के साथ । सामाजिक विडम्बनाएँ किस तरह मनुष्य और समाज में तब्दीलियाँ लाती हैं इसका एक भीषण चित्र कवि प्रस्तुत करते हैं । समाज में जितने विभाग के लोग हैं, जो सत्ताधारी है, जननायक है, वे सब इन गोबरैले जैसे हैं । बिलकुल एक जैसे । इन गोबरैलों को देखते-देखते आम जनता भी गोबरैले बन जाते हैं । हर एक अपना संसार बनाना चाहता है और उसी चक्कर में औंधे मुँह गिर पडते हैं । यहाँ तक कि शब्द भी बदल जाते हैं । अगर ये गोबरैले फैलकर पूरे समाज को एक काली चमकदार वस्तु बना देंगे तो भी हम यों ही खडे रहेंगे और हम सिर्फ यही कहेंगे कि दु:ख, घाव, जंगल सब काला है, वह गोबरैलों के कारण । आँधी, खून, मन सब हरा है इन गोबरैलों के कारण । जो भी हो सिर्फ यही कहते रहेंगे निर्लज्ज होकर । और

गोबरैले चढ रहे हैं
गोबरैले बढ रहे हैं
और हम सब

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 3।

गलीज़ इश्तहारों से लदी
दीवार की तरह निर्लज्ज खड़े हैं ।[1]

सर्वेश्वर की कविता में लोकजीवन का ऐसे चित्र उभरकर आते है जो उनकी काव्य संवेदना के अभिन्न अंग हैं । बाँसगाँव कई प्रकार की ग्रामीण स्मृतियों और तज्जन्य स्थितियों के बिखरे चित्रों का ऐसा सन्निवेश है कि बिखराव चित्रों का है पर उसकी अंतरंगता में जिस दृष्टि को सर्वेश्वर ने सुरक्षित रखा है जो जीवन के ऐसे जैविक पक्षों से संबंधित है जिनका स्वत: स्फूर्त विकास दिखाया गया है ।

"बाँसगाँव" कई ग्रामीण स्मृतियों के ताज़े चित्रों का संश्लेष है जिसकी तह में गरीबी की वास्तविकता प्रकट होती है । इस अवसाद के विभिन्न आयामों को सर्वेश्वर स्मृतियों में चिपके लोकसंदर्भ के साथ जोडते हैं । इसलिए अंधेरा का सिकुडना उनके लिए बकरियों में तब्दीली है जिनकी पीली आँखों में विराम स्थिर है और उनकी आज़ादी जो मृत्यु के पहले मिमियाने की है । मामूली लोकचित्र यहाँ एक विकराल रूप धारण करता है । अत: लोक प्रसंगमात्र प्रतीकात्मक, विन्यास तक सीमित नहीं है । बल्कि उसके अंतरंग में जीवन संबंधी व्यापक प्रसंग है ।

सर्वेश्वर के प्रतीकात्मक विन्यास लोकमानस को पूरी आत्मीयता में उभारते हैं । प्रत्येक लोकवातावरण में अटके हुए ऐसे अनेक चित्र "बाँसगाँव" में है । सर्वेश्वर की स्मृतियों का यह लोक चित्र न जड है न गतिहीन, वह एक जीवन्त चित्र है । एक जीती जागती सच्चाई है । ऐसे में

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ.5।

लोकमानस की विवृति कविता में जन्म लेती है जो कविता की ऊर्जा है जिसमें कवि की सहज जीवन दृष्टि शामिल है ।

सर्वेश्वर की कविता में लोकचित्र मोहक अवस्थाओं के प्रतीक नहीं है । उसके बदले ये लोकचित्र कुछ विकराल स्थितियों का, कुछ अवसादों का सही दस्तावेज़ है । कविता की अन्तिम पंक्तियाँ लोकजीवन का ऐसा चित्र प्रस्तुत करती हैं । यह चित्र चित्रात्मकता को लांघकर वास्तविकता में विन्यसित होता है ।

बासगाँव एक पत्थर है
दानवीर सेठ लोकतंत्र का
जो बंद प्याऊ पर लगा है
जिससे पीठ टिकाए, इस जलती धूप में
आज भी खड़ी है मेरे साथ हाँफती गरीबी ।[1]

नदी से-1, नदी से-2 और नदी से-3 सर्वेश्वर के लोक-मानस संबंधी दृष्टिकोण को व्यक्त करने में सहायक हैं । जल का मानव जीवन और मानव मन के साथ जो लगाव है, मानवीय अस्तित्व को बनाए रखने में जल की जो देन है उसे कवि ने दर्शाया है । यद्यपि नदी इन बातों से अनभिज्ञ है कि कोई उसके किनारे बैठकर सपने बुन रहा है, कोई सीपियों से खेलता है, कोई जीवन रूपी प्रवाह की थाह नापने की कोशिश करता है । लेकिन नदी बहती रहती है । यहाँ कवि ने मानव जीवन से नदी का संबंध व्यक्त किया है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 59

तमाम दोपहर
मैं उन सीपियों से खेलता रहा
जो तुम्हारी रेत में पड़ी थी
रेत में लिखता रहा गहरा और गहरा
और देखता रहा कि कितनी सफाई से
आहिस्ता आहिस्ता हर लिखा मिट जाता है ।[1]

आगे नदी से-2 में कवि कहते हैं कि मैं अपनी अंजली में जितना जल लेता हूँ मेरे लिए सिर्फ तुम उतनी ही हो । इससे मैं तृषा शांत करता हूँ मेरे अन्तर के उग्र सूर्य को अर्ध्य चढाता हूँ । और तब मुझे लगता है कि तब यह नदी मेरे मन में बहता है । नदी का कवि के भीतर बहने का मतलब ही अलग है । अर्थात् कवि के अंदर गाँव के प्रति, वहाँ की आबोहवा के प्रति जो श्रद्धा का भाव है, व्यस्त है । नदी जो नैरन्तर्य है, उसे सफलता से प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है ।

और हर बार रीती अंजलि
आँखों और मस्तक से लगा
अनुभव करता हूँ
मैं तुम्हें
अपने भीतर
बहते देख रहा हूँ ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 95 - प्र. 1982
2. वही - पृ. 97 - प्र. 1982

नदी से-3 में इस वानस्पतिक अनिवार्यता के साथ मानव की एकरूपता का चित्र खींचते हुए वे कहते हैं -

इस एकान्त में
कपडे उतारकर
कूद पड़ूँगा मैं
तुम्हारे लहराते जल में ।
निर्मल देह
और निर्मल हो जायेगी
फिर हम दोनों
एक दूसरे को छोडकर चले जाएँगे ।[1]

"चाँदनी की पाँच परतें" नामक कविता भी जल, थल, नीलाकाश, आँख और विश्वास में झलकनेवाली चाँदनी की अज्ञात पाँच परतों को दिखाया है । यहाँ जल, थल, और आकाश का सीधा जिक्र करके कवि ने इन तीनों की श्रेणी में विश्वास और आँखों की रोशनी को रखा है । यहाँ जल, थल और नीलाकाश की स्थिरता व ऊष्मलता को दिखाकर कवि गाँव की एहमियत पर ज़ोर देते हैं । लेकिन कवि ने एक ओर बात को भी स्पष्ट किया है । वह यह कि चाँदनी की पाँच परतें अज्ञात हैं । कोई उसका विश्लेषण नहीं कर सकता । कवि के मन में कुछ सपने हैं, कुछ बनने की इच्छा है, लेकिन कवि कहते हैं -

एक जो मैं आज हूँ
एक जो मैं हो न पाया

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 98

एक जो मैं हो न पाऊँगा कभी भी
एक जो होने नहीं दोगी मुझे तुम
एक जिसकी है हमारे बीच यह अभिशप्त छाया ।
क्यों सहूँ कब तक सहूँ
कितना कठिन आघात है ।[1]

हमारी ज़िन्दगी से विलुप्त हो चुकी मानवीय संवेदनाओं को कवि ने प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

मानव ने तकनीकी और अन्य विषयों पर काबिलियत तो हाज़िल की है लेकिन प्रकृति से उसका सरोकार, ढीला पड गया है । पर्वत, सूरज, नदी आदि सब अपना अलग अस्तित्व रखते हैं । लेकिन आज वे अस्तित्वहीनता के दर्दनाक मुकाम में पहुँचकर कराह रहे हैं । हमें अपनी इस गैर ज़िम्मेदारी के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करनी है । इसलिए "अब मैं सूरज को नहीं डूबने दूँगा" में सर्वेश्वर कहते हैं कि मैं ने अपने कन्धों चौडे कर दिये हैं और मुट्ठियाँ मज़बूत कर ली है क्योंकि मुझे सूरज को डूबने से बचाना है ।

सूरज जाएगा भी तो कहाँ
उसे यहीं रहना होगा,
यहीं - हमारी साँसों में
हमारी रगों में
हमारे संकल्पों में
हमारे रतजगों में
तुम उदास मत होओ
अब मैं किसी भी सूरज को डूबने नहीं दूँगा ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टंगे लोग - पृ. 105
2. वही - पृ. 119

मानव-जीवन की अहम बात को हमेशा बरकरार रखने का प्रयास यहाँ कवि करते हैं ।

"मेरे भीतर की कोयल" में भी कवि ने लुप्त होनेवाले प्राकृतिक स्वत्व का वर्णन करके बताते हैं कि

कहाँ से लाऊँ
एक घनी फलों से लदी अमराई ?
कुछ बूढे पेड
पत्तियाँ संभाले खडे है
यही क्या कम है ।

स्पष्ट है कि यहाँ फलों से लदी अमराई के स्थान पर पत्तियाँ संभालकर खडे बूढे पेड़ के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा । कवि चेतावनी देते हैं कि दिन ब दिन कमज़ोर होती जानेवाली कोयल की आवाज़ एक दिन शिथिल हो जाएगी और वह कहीं उड़ जायेगी । तब पागलों सी हरकत के साथ खामोश बैठने के अलावा और कोई चारा भी नहीं रहेगा ।

यहाँ लोक का मानव पर जो प्रभाव है उसका चित्रण करके उसके अभाव में होनेवाली गतिविधियों का नक्शा भी कवि ने तैयार किया है । प्रकृति की अनमोल चीज़ों के लुट जाने पर खामोशी बरतने के अलावा कुछ कर नहीं किया जा सकता । लेकिन यह खामोशी काफी खतरनाक है । उस विडम्बनापूर्ण स्थिति तक पहुँचने से पहले बचाव का रास्ता ढूँढ निकालना ही बेहत्तर है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 120

सर्वेश्वर की कविताएँ सच्चे अर्थ में लोक के प्रति अपने मोह को दिखानेवाली हैं । कवि "गाँव का सपेरा" नामक कविता में लु-शुन को अपने गाँव का सपेरा दिखाना चाहते हैं जिसे खुद कवि ने चालीस साल पहले देखा था । इसी बहाने गाँव का सैर करा देते हैं और समाज एवं राजनीति के क्षेत्र में पल रही पाशविकताओं का खुलासा कर देते हैं ।

जिस पेड के नीचे नाच होती थी वहाँ आज एक दोमंजिला मकान है । एक तालाब था वह भी अब नहीं है । जिस नदी, चाँदनी, कोहरा, मछुआरा, जंगल, नौका, बच्चे, किसान आदि की बात तुम करते हो वे -

सभी जीवित पृष्ठभूमि है
हमारे गाँव के इस सपेरा की
जहाँ से आवाज़ आती है
बालु की रेत की राह है मैं कैसे चलूँ ?[1]

इतना ही नहीं ये सब निस्तेज भी हो गये हैं । यहाँ कवि-मन की निराशा से ग्रस्त बेचैनी को हम अनुभव कर सकते हैं । ग्राम्य जीवन के शान्त परिप्रेक्ष्य में जिन-जिन चीज़ों की ज़रूरत है, उनका अभाव कितना दर्दनाक है यह भी यहाँ व्यक्त है ।

"गाँव का सपेरा" लोक जीवन का एहम हिस्सा है । उसके बिना गाँव में फुर्ती पहले नहीं भरती थी । लेकिन आज वह जनमानस से विलीन सी हो गया है । परन्तु कवि लु शुन के लिए इन सब का आयोजन करने पर तुले हैं । इसलिए वे लिखते हैं -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टंगे लोग - पृ. 126

चाँदनी / कोहरा/जंगल
नदी/नाव/मछुआरे
यह सब मैं अपनी कल्पना से
तुम्हारे लिए सजा दूँगा
उत्साही बच्चे इकट्ठे कर दूँगा
और नेक उदार किसान भी ।[1]

बदलती सामाजिकता के खुरदरे यथार्थ में नष्ट होनेवाली हमारी लोक चेतना को कल्पना लोक में ही प्रस्तुत करने का निश्चय कवि की ग्राम्य संवेदनाओं की प्रतिक्रिया है ।

लु-शुन शीर्षक कविता में क्रांति के मंच की तैयारी की भूमिका बांधी है । लेकिन कविता उस अर्थ में बुलन्द नहीं है जिस अनुपात से उसका वस्तु चयन है । इसका कारण यह है कि उसमें सर्वेश्वर ने लोकदृष्टि के एक विस्तृत परिदृश्य हमारे सामने रखा है ।

"वे कहती हैं वहाँ अक्सर पेड़ों में बंधी लाशें मिलती हैं । वे इस डर से सहमी रहती है कि कहीं जिस पेड पर वे उतर रही है उनसे बंधी कोई लाश न हो । बंधी हुई लाशवाला पेड, पेड नहीं रह जाता, न उसकी पत्तियाँ, पत्तियाँ रह जाती वह ऐसा मानती हैं । उन पेड़ों से लपटें निकलती होती है और पत्तियाँ अंगारों सी धधकती रहती है । उन पर वह बैठ नहीं पाती, न बसेरा ले पाती है । वह डर रही है कि कहीं एक दिन सारा जंगल जलने न लगे ।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टंगे लोग - पृ. 128
2. वही - पृ. 134-135

प्रकृति की शीतलता और समाज की कटुता दोनों को मिलाकर सर्वेश्वर ने एक सामंजस्य स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

सर्वेश्वर की कविताओं में लोक अपनी अनेक छवि लेकर आता है और लोक मानस भिन्नार्थी संदर्भों का खुलासा भी करता है । "काठ की घंटियों" से लेकर "खूँटियों पर टँगे लोग" तक की काव्य यात्रा में इस "लोकमानस" की चेतना का उत्तरोत्तर विकास दर्शनीय है ।

अध्याय : तीन

सामाजिक यथार्थ का सन्निवेश और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की जनवादी कविताओं का विश्लेषण

कविता की जनवादी धारा

कविता सदैव जनवादी ही हुआ करती है । प्रत्येक युग में युगीन परिस्थितियों के अनुरूप कविता में जनवादिता का स्वर मुखरित होता है । लेकिन यह भी ज़रूरी नहीं है कि कविता मात्र जनवादी स्वर से ही संबंधित हो । जीवन यथार्थ के कई पक्ष कविता में व्यंजित हो सकते हैं जिनमें हम मानवीयता के दर्शन करते हैं । लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी कविता में जनवादी धारा कभी सूख नहीं गयी है । हिन्दी कविता के प्रत्येक युग में समावेश के साथ जनवादी प्रवृत्ति कविता को प्रासंगिक बनाती रही है । भारतेन्दु काल से लेकर आधुनिक कविता तक की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियाँ इसके लिए उदाहरण है । इतने पर भी कविता में जनवादी प्रवृत्ति की चर्चा प्रगतिवाद के बाद ही शुरू होती है । वस्तुतः आधुनिक कविता का प्रारंभ भी उसी कविता-आन्दोलन से माना जाना चाहिए ।

प्रगतिवाद

सन् 1930 के आसपास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त एक साहित्य धारा का जन्म हुआ जिसे सन् 1936 में प्रगतिशील या प्रगतिवाद साहित्य की संज्ञा दी गयी । यद्यपि प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिवाद की भिन्नता और एकात्मकता पर विवाद है फिर भी दोनों की आधारभूमि एक ही है । इस कालखंड में हिन्दी कविता में समूची जनवादी स्वर गुंजायमान हो गया है ।

ऐसा माना जाता है कि प्रगतिवादी चेतना के तत्व छायावाद में निहित थे । छायावादी कवि व्यक्ति की राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता पर बल देने लगे थे । पंतजी ने इसका समर्थन करते हुए "रूपाभ" की भूमिका में लिखा - "इस युग में वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों के प्रति हमारी कल्पना की जड़मूल हिल गयी हैं । अतएव पोषक सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है ।"[1] इस प्रकार छायावादी कवियों ने अपने भौतिकवादी और आध्यात्मिक दृष्टि के समन्वय के मार्ग के अन्वेषण द्वारा प्रगतिवाद का मार्ग प्रशस्त किया ।

कल्पना प्रवण अन्तर्दृष्टि जिस प्रकार छायावाद की विशेषता है उसी प्रकार सामाजिक यथार्थ से युक्त दृष्टि प्रगतिवाद की विशेषता है । प्रगतिवाद इसी दृष्टि से प्रकृति और मानव को देखता है । प्रगतिवादी साहित्य निरंतर विकासशील साहित्यधारा है । प्रगतिवादी साहित्य लेखक की अन्तः प्रेरणा से उद्भूत नहीं होता बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम से वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है और उसके सिद्धांत उत्तरोत्तर स्पष्ट तथा अधिक पूर्ण होते चलते हैं ।

प्रगतिवाद का आरंभ साहित्य में आर्थिक और राजनीतिक आन्दोलन के रूप में हुआ । छायावाद यदि इस सदी के सांस्कृतिक पुनर्जागरण की उपज था तो प्रगतिवाद राजनीतिक जागरण की । प्रगतिशील कवि अपनी वैयक्तिकता को भूलकर समाज के विभिन्न तबकों के लोगों को, उनके वर्ग वैषम्य को, बेबसी को और लाचारी को देखते हैं । यहाँ एक बात स्पष्ट ज़ाहिर होता है कि मार्क्सवाद का प्रभाव प्रगतिवादी साहित्य पर है ।

---

1. सुमित्रानन्दन पंत - रूपाभ (भूमिका) अंक 2 - जुलाई ।

मार्क्सवादी आदर्शों को स्वीकारना और उसको कविता द्वारा समाज में पहुँचाने की प्रबल इच्छा कवियों में जागृत हुई । परिणामस्वरूप मार्क्सवादी आदर्शों का प्रचार व प्रसार खुब हुआ । ज़्यादातर कवि मध्यवर्गीय जीवन की भीषणता से परिचित होने के कारण मार्क्सवादी आदर्शों की ओर झुकाव एक स्वाभाविक सी बात थी । वर्ग वैषम्य, और जीवनयापन की कटुवाहट को मध्यवर्ग के समान और कोई नहीं जानता ।

हिन्दी कविता में व्यंग्य काव्य का जितना सुन्दर परिपाक प्रगतिवाद में हुआ उतना कहीं नहीं । प्रगतिवादी कवियों ने व्यंग्य का सहारा व्यंग्य के लिए किया नहीं है । वर्ग वैषम्य पर, समाज की असमान स्थितियों पर, तथा सामाजिक अन्तर्विरोधों पर उन्हें प्रकाश डालना था । इसलिए व्यंग्य उनकी कवि दृष्टि के लिए सशक्त सहारा भी बन गया है और कभी-कभी उनकी कवि-दृष्टि भी । इस अर्थ में नागार्जुन के व्यंग्य को देखा जाना चाहिए । नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के व्यंग्य नुकीले होते हैं । "प्रेत का बयान" में नागार्जुन यमराज के प्रश्न के उत्तर के रूप लिखते हैं -

जहाँ तक मेरा अपना संबंध है
सुनिये महाराज
तनिक भी पीर नहीं
दुःख नहीं दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण[1]

---

1. नागार्जुन - युगधारा - पृ. 89 - प्र. 1953

मृत्यु मुँह खोलकर दबोचने के लिए सामने खड़ी है लेकिन हिलने की शक्ति से वंचित उस अध्यापक का चित्र हमारे सामने सामाजिक शोषण और तज्जन्य दयनीयता को ही दर्शाता है ।

प्रगतिवादी साहित्य अक्सर अनैतिक, अविकसित आडंबर पूर्ण जीवन यथार्थ पर चोट इसलिए करता है कि वह सामान्य जन का पक्षधर है । जहाँ तक कविता का सवाल है वह प्रताडित मनुष्य का पक्ष ही लेती है । उसके सामने विकल्पहीनता नहीं है । प्रगतिवादी कविता धरती की कविता है या मिट्टी की कविता है । त्रिलोचन ने अपने प्रथम कविता संकलन का नाम "धरती" रखा है । मिट्टी के इस गहरे रिश्ते के कारण प्रगतिवादी कविता में प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है । लेकिन इनमें छायावादियों के समान प्रकृति के प्रति मुग्धभाव नहीं है । प्रकृति को वे पूर्णत: जी लेना चाहते हैं । इसलिए प्रकृति का बदला हुआ संदर्भ प्रगतिवादी रचनाओं में मिलता है उसे कविता का लोक सन्दर्भ कहा जा सकता है । जब कविता में प्रकृति के मोहासक्त रूप के बदले जब जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति के रूप में अवतरित किया जाता है तो उसे कविता का लोक संदर्भ कहा जा सकता है । उदाहरण के लिए नागार्जुन की कविता "अकाल और उसके बाद" देखी जा सकती है :

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गरत
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त ।

दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद

चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद ।[1]

इस कविता में प्रकृति का वर्णन नहीं है । यह प्रकृति कविता है, यह जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति की कविता है, यह लोकमानस की कविता है उसी प्रकार त्रिलोचन की "नगई महरा" शीर्षक लंबी कविता भी देखी जा सकती है । इसलिए प्रगतिवाद अनेक प्रकार के जीवन यथार्थ के साथ प्रतिक्रियान्वित होता है । तब यह स्वाभाविक है कि उसमें जनवादी स्वर सुरक्षित रहता है । अत: प्रगतिवादी कविता को जनवादी कविता की सही और सच्ची प्रारंभिक पीठिका बनाए तो गलत नहीं होगा ।

प्रयोगवाद

जिस प्रकार प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना ने प्रगतिशील साहित्य को जन्म दिया उसी प्रकार प्रयोगवाद की चर्चा "तारसप्तक" से शुरू हुई, "प्रतीक" पत्रिका से उसे बल मिला और "दूसरा सप्तक" से उसकी स्थापना हुई । तारसप्तक के संपादकीय वक्तव्य ने "प्रयोगवाद" शब्द का बीजावापन किया ।

हिन्दी के प्रमुख आलोचक नामवरसिंह ने प्रयोगवाद के बारे में लिखा - प्रयोगवाद कोरे रूपवाद से अधिक व्यापक प्रवृत्ति तथा विचारधारा का वाहक है जिसमें थोड़े-थोड़े अंतर के साथ अनेक ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय

---

1. नागार्जुन - अस्मिता (सं. डा. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव , डा. जितेन्द्रनाथ पाठक) - पृ. 17 - तृ. सं. 1992

मनोवृत्तियों और विचारधाराओं का समावेश हो गया है । ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोगवाद उत्तर छायावाद की समाजविरोधी अतिशय व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का ही बढ़ाव है ।"[1]

प्रयोगशील कवियों की पहली विशेषता है वाद के विरुद्ध विद्रोह । अज्ञेय ने साफ कहा है -"प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं । न प्रयोग अपने आपमें इष्ट या साध्य है । ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है ।"[2] प्रयोगशील जीवन दृष्टि की दूसरी विशेषता है सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण । सत्य का अन्वेषण हर एक व्यक्ति को खुद करना पड़ता है । इस प्रकार प्रयोगशीलता व्यक्तिगत अन्वेषण की वस्तु है । वास्तविकता यह है कि प्रयोगशीलता नितांत अनुभव परक जीवनदृष्टि है ।

प्रयोगवाद में कल्पनाशीलता के विपरीत यथार्थवाद का आग्रह अधिक है क्योंकि डा.नामवरसिंह के मतानुसार प्रयोगवाद का उदय मोहभंग (डिस-इल्यूज़नमेंट) से हुआ ।[3] प्रयोगवाद की दृष्टि यथार्थवादी होने के कारण भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा हुई । इस बौद्धिकता के परिणामस्वरूप प्रयोगवादी कवियों में छायावादी भावुकता का बहिष्कार दिखाई देने लगा । इसीलिए अज्ञेयजी बाकी समस्त उपमानों को छोडकर अपनी प्रिया को "बाजरे की कलगी"से उपमित करते हैं । इस प्रकार करके वे घोषित करते हैं -

---

1. डा.नामवरसिंह - आधुनिक साहित्य का प्रवृत्तियाँ - पृ. 111-112 प्र.स. 199
2. अज्ञेय - दूसरा सप्तक - भूमिका - पृ. 6 - द्वि.सं. 1970
3. डा.नामवर सिंह - आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ. 126

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है ।
बल्कि केवल यही :
ये उपमान मैले हो गयी है ।[1]

प्रयोगवाद की यथार्थवादी अन्तर्मुखी तथा बौद्धिक प्रवृत्ति ने कविता के शब्द चयन, वाक्य विन्यास, छन्द और प्रतीक योजना को भी प्रभावित किया ।

प्रयोगवादी कविताओं में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के चित्र भी मिलते हैं । प्रयोगवादी कवियों ने साहस के साथ व्यक्ति मन के प्रस्फुटन के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज की दुर्बलताओं का पर्दाफाश किया है । इस प्रकार जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करने के कारण कविताओं की संवेदना गहरी है । हिन्दी कविता के इतिहास में सचमुच प्रयोगवाद सूक्ष्म संवेदना और गहन अभिव्यंजना संबंधी कुछ महत्वपूर्ण निधि है । मध्यवर्ग की मनोवृत्ति को पूर्णत: समझने में प्रयोगवादी कवि सफल निकले ।

इसके साथ साथ प्रयोगवादी कविता ने प्रगतिशील तत्वों को भी बढ़ावा दिया है । अपनी व्यक्तिवादी उन्मुखताओं के बावजूद उनकी कविताओं में, जहाँ उन्होंने जीवन यथार्थ को अभिव्यंजित किया है, जनवादी रुझान का एकदम अभाव नहीं है । व्यक्ति की नज़रिये से देखने के बावजूद सामाजिक दृष्टि का एकदम लोप नहीं हैं । अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं में उपलब्ध ऐसी प्रवृत्ति की संभावनाओं पर केदारनाथ सिंह ने प्रकाश डाला है ।[2]

---

1. अज्ञेय - कविश्री अज्ञेय - सं. सियारामशरण गुप्त - पृ. 25
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - {सं} अज्ञेय { ।9 {{केदारनाथ सिंह का लेख - अज्ञेय की प्रारंभिक कविताएँ - पृ.

प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल आदि की रचनाओं में प्रगतिशील स्वर पर्याप्त बुलंद है जिसे जनवादी कविता की श्रेणी में रखना उचित प्रतीत होता है ।

नई कविता

नयी कविता की शुरूआत सन् 1950 के आसपास मानी जा सकती हैं । "तारसप्तक" के प्रकाशन तथा उसके बाद भी प्रयोगवादी रचनाओं ने नई कविता के लिए एक भावभूमि तैयार ही दी थी, जिसको आधार मानकर नई कविता का विकास हुआ ।

नई कविता का स्वर विद्रोह का स्वर नहीं है, बल्कि रोष, क्षोभ और मानवीय सत्यों को स्थापित करने का स्वर है । इसलिए सहज ही यह बात स्वीकार्य है कि नई कविता प्रयोगवाद का विकसित रूप है । प्रयोगवाद में रूक्षता और प्रयोगशीलता की भरमार थी तो नई कविता ने इन सबको त्यागकर सत्य के विविध आयामों का उद्घाटन किया, मानवीय संवेदनाओं के गहन स्तरों पर प्रतिष्ठित किया । नई कविता की यही खासियत है कि वह भोगे हुए सत्य की अभिव्यक्ति है ।

नयी कविता का सामाजिक यथार्थ

जीवन यथार्थ की पहचान कवि की सामाजिक दृष्टि का एक महत्वपूर्ण आधार है । यदि कवि समसामयिक जीवन यथार्थ से अनभिज्ञ होकर काव्य चेतना का विकास चाहता है तो वहाँ शाश्वत सत्य का अभाव होता है

और सिर्फ वैयक्तिक चेतना का विकास होता है । कविता की सार्थकता कवि की गहरी पहचान पर आश्रित है । सामयिकता के नैतिक दायित्व की पहचान एवं उसके निर्वाह के लिए भी समसामयिकता से गहरी संपृक्ति कवि के लिए आवश्यक है । यही नहीं, अधिकाधिक मानव हित में नवीन मूल्यों का सृजन एवं पारंपरिक मूल्यों का संशोधन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक समकालीन जीवन यथार्थ की सूक्ष्मतम स्थितियों का रेखांकन कविता में संपूर्ण न हो जाए ।

यथार्थ एकांगी और एकपक्षीय नहीं है । यथार्थवादी लेखक व्यक्ति के सामाजिक संघर्ष का चित्रण करते हुए परिस्थिति का चित्रण भी करता है और "व्यक्ति के भावजगत्" तथा "उसके मानसिक संघर्ष" का चित्रण भी करता है । यथार्थवाद में मानवीय स्नेह, जीवन की समग्रता का, सौंदर्यबोध और प्रखर दृष्टिकोण आदि आकलित होते हैं । सामाजिक यथार्थ के आकलनकर्ता कवि को समाज के प्रति प्रतिबद्ध होना तब अनिवार्य होता है । कवि हमेशा यथार्थ का सही रूप कविता में प्रस्तुत करना चाहता है । सामाजिक संघर्ष के चित्रण के लिए बाह्य यथार्थ का चित्रण उतना ही आवश्यक है जितना मानसिक संघर्ष का । इसलिए यथार्थ को वे जीवन-यथार्थ एवं काव्य यथार्थ में बाँटकर नहीं देखते । अर्थात् यथार्थ के दोनों ही रूप कविता में अंकित हो सकते हैं । स्पष्ट है कि तारसप्तक के कवियों ने साहित्य के लिए यथार्थ और यथार्थ बोध को महत्वपूर्ण माना है । इनके यथार्थबोध के साथ वर्तमान सामाजिक जीवन भी जुडा है । अज्ञेय समेत "तारसप्तक" के सभी कवि इसे मानते हैं ।"[1]

---

1. तारसप्तक के कवियों की समाज चेतना - डा. राजेन्द्र प्रसाद - पृ. 134 - प्र. सं. 1987

नए कवियों ने स्वीकार किया है कि यथार्थ का चित्रण करना कठिन है । क्योंकि इसके लिए वर्तमान जीवन में गहरे पैठना पड़ता है । नए कवि की चिन्ता यही है कि किस प्रकार वर्तमान जीवन के यथार्थ से अपने को जोड़ सकते हैं और कविता को जनवादी स्वर से मुखरित कर सकते हैं । इस कार्य के लिए नये कवियों ने जनजीवन के यथार्थ का सही साक्षात्कार किया हैं । तब शोषितों व पीड़ितों के प्रति उनकी सहानुभूति शाब्दिक नहीं रही । जनजीवन का अभिन्न अंग बनकर नये कवि उस यथार्थ का जीता जागता नक्शा प्रस्तुत करते हैं ।

समकालीन सामाजिक यथार्थ के वस्तुमूलक आकलन एवं विश्लेषण से जिस संवेदनात्मक उद्देश्य तक पहुँचने का लक्ष्य कवि बनाता है उसका संबंध मात्र व्यक्ति विशेष से न होकर पूरे समाज से होता है । यदि कवि द्वारा प्रस्तुत यथार्थ हमारे समसामयिक जीवन का चित्रण नहीं करता, हमें जीवन की गहन चिन्ताओं से उलझने के लिए उकसाता नहीं तो सामाजिक दृष्टि से उसका मूल्य कम है । किसी भी काल की श्रेष्ठ रचना समसामयिक यथार्थ से असंपृक्त रहकर नहीं उससे जुड़कर ऊर्जा प्राप्त करती है । स्पष्ट है कि समसामयिक जीवन यथार्थ के संवेदनशील बोध एवं साहित्य में उसके उपयोग का महत्व बहुत अधिक है । जो कवि इससे पलायन करने की कोशिश करता है वह न केवल सामाजिक चेतना से दूर होने लगता हैं बल्कि उसकी कविता की अर्थवत्ता क्रमशः क्षीण होने लगती है । नए कवि कभी भी इसी प्रकार की चेष्टा नहीं करते । इसके विपरीत वे हमेशा समसामयिक सच्चाई का पर्दाफाश करते हैं । युगीन यथार्थ से कवि की संपृक्ति यदि गहरी है तो कवि उसका सदुपयोग सही तौर पर कर सकते हैं । तब कवि की रचना में अपेक्षित गहराई, प्रभावोत्पादकता एवं सापेक्ष स्थायित्व का होना स्वाभाविक है । यही बात नई कविता में स्पष्टः प्राप्त होती है ।

व्यक्ति सत्य और सामाजिक सत्य तथा विद्रोह का व्यक्ति स्तर और सामाजिक स्तर

नयी कविता व्यक्ति सत्ता केन्द्री कविता है । उसकी सामाजिकता व्यक्ति की भावगत भावनाओं पर आधारित होती है । व्यक्ति से बृहत्तर सामाजिकता की ओर उसका विकास है । इसलिए व्यक्ति सत्ता का परित्याग उसमें नहीं है । उसकी स्वीकृति प्रकट है । लेकिन वह व्यक्ति की भावनाओं के इर्द-गिर्द सिमटती भी नहीं है । वस्तुत: वह अधिक विकसित होना अपना रचनात्मक ध्येय समझती है । इन दोनों पक्षों का आनुपातिक योग उसमें रहता है ।

समाज का यथार्थ कभी भी प्रकटत: दृष्टिगोचर नहीं होता है बल्कि वह कविता भी भीतरी तह में बनी रहती है और उनकी कई परतें भी हैं । इसलिए रचनाकार को सबसे पहले अपने समय की संश्लिष्ट बनावट की सही पहचान करनी पड़ती है । साहित्यकार यथार्थ को अपने-अपने ढंग से देखने का प्रयत्न करते हैं और इसमें उनकी विचारधारा, मानसिकता, वर्गीय चरित्र, भावजगत आदि की भूमिका होती है । ग्रहण और प्रकाशन के बीच लेखक का अपना व्यक्तित्व क्रियाशील होता है और समाज से उपलब्ध अनुभव धीरे धीरे नया रूपान्तरण प्राप्त करता है । "रचना एक अर्थ में वैयक्तिक प्रयत्न कही जा सकती है, पर वास्तव में वह सामूहिक अभिव्यक्ति है क्योंकि जीवन से निरंतर साक्षात्कार करते हुए उसे अपनी बात कहनी है । व्यक्ति अनुभव समाज अनुभव से जुडकर ही रचना में प्रयोजनशील हो पाता है । और यह काम सरल नहीं है । वास्तव में यह केवल रचनाकर्म नहीं है, एक प्रकार से कवि के संपूर्ण व्यक्तित्व का ही रूपान्तरण हैं ।"[1] अक्सर यह तथ्य कविता में तथा कवि चिन्तन में प्रकट होता रहा है ।

---

1. नयी कविता की भूमिका - डा.प्रेमशंकर - पृ.6 - प्र.सं. 1988

नयी कविता में मानव संबंधों की दो प्रवृत्तियाँ साफ दृष्टव्य है । एक है व्यक्ति पर उनका आग्रह, दूसरा है समष्टि पर आग्रह । व्यक्ति और विश्व को अधिकाधिक समझने, पूर्णतर आत्मचेतस होने की मानवीय आकांक्षा कविता की रचना प्रक्रिया के साथ बहुत गहराई तक जुडी हुई है । अनुभव जिस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है, उसे सांस्कृतिक परंपरा से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता । क्योंकि यह सांस्कृतिक परंपरा सामाजिकता की देन है । व्यक्ति को अपने गौरव और निजी अनुभवों की प्रामाणिकता को बरकरार रखने के लिए सामाजिक होकर रहना पडता है । व्यक्ति के महत्व की पूर्णता मानवीयता की पूर्णता में निहित है और व्यक्ति की आत्मा असल में उनका सामाजिक व्यक्तित्व है ।

अज्ञेय में व्यक्ति सत्य को खोज निकालने की प्रबल इच्छा है । उनका व्यक्ति समाज से एकदम अलग नहीं है बल्कि उनमें समाज-संपृक्ति का भाव प्रखर है । इसलिए व्यक्ति सत्य की खोज उनकी कविता का बुनियादी सरोकार बन जाता है । मुक्तिबोध के लिए व्यक्ति की संपूर्ण सामाजिकता के बीच में कविता की पहचान महत्वपूर्ण है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि सच्चा कवि वही हैं जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके । इस कथन का तात्पर्य यह है कि कवि का दायित्व व्यक्ति के प्रति पहले और समाज के प्रति बाद में हैं । नया कवि समाज के प्रति दायित्व बोध के लिए व्यक्ति को ही अधिक महत्व देता आया है और व्यक्ति के अनुभव-लोक एवं संवेदना लोक में गोता लगाकर ही समाज के अनुभवों को आत्मसात करता रहा है । इसलिए अपनी

वैयक्तिक चेतना के प्रस्तुतीकरण से सामाजिक दायित्व को स्वरूप देता है । मानवीय चेतना जब बड़ी-बड़ी समस्याओं के अन्तराल से फूटती है और महत्तर लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है तब कविता की सामाजिकता असंदिग्ध एवं आवश्यक बन जाती है ।

नयी कविता का परिवेश युगजीवन है । उस में व्यक्ति जीवन में व्याप्त अनास्था, कुंठा, हताशा और विघटन के चिह्न पाये जाते हैं । परन्तु ये चिह्न व्यक्तिगत परिवेश से ही संबंधित नहीं है । वे सामाजिक भी हैं । सामाजिक बिखराव को नयी कविता के दौर में व्यक्ति के अनुभव जगत के संदर्भ में पहचाना गया । लेकिन उस पहचान में समाज-संदर्भ को अनदेखा करने की प्रवृत्ति नहीं है ।

नया कवि हमेशा वैयक्तिकता के पक्षधर हैं लेकिन वह वैयक्तिक चेतना मानवता के निरन्तर प्रवाह से प्रस्फुटित हुई है । उसकी दृष्टि में समाज परिधि है और व्यक्ति केन्द्र । प्राय: नयी कविता के सभी कवि सामाजिक मूल्य को महत्ता देते आये हैं । समाज की प्रत्येक इकाई की प्रत्येक चेतना किसी न किसी अंश में सामाजिक होती है ।

नयी कविता में अभिव्यक्त जीवन सत्य आरोपित नहीं है जबकि वह मानव-अनुभूत सत्य है । अत: नई कविता की समस्या व्यक्ति और समाज की है । समाज-संवेदित इस यथार्थ को नया कवि व्यक्तिसत्य के रूप में आत्मसात करके व्यक्त करने का प्रयास करता आया है । जीवन मूल्यों के संदर्भ में भी नई कविता में स्वस्थ व्यक्तिचेतना को अभिव्यक्ति मिली है ।क्योंकि नया कवि वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार की संवेदनाओं से प्रभावित है ।

जिस कविता में यथार्थ का बृहत्तर संदर्भ है वही कविता श्रेष्ठतम है और यथार्थ अपने पंखों को जितनी व्यापकता में फैलाता है उतना वह सारसत्य से युक्त हो जाती है । इसलिए ऐसी भी राय प्रकट की गयी है कि "आज की कविता राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश से गहरे रूप में जुडी हुई है । उसके केन्द्र में "समूह" है व्यक्ति नहीं ।"[1] यह कविता आम आदमी की बात आम आदमी की भाषा में कहती है । कवि को वैयक्तिक एवं सामाजिक स्थान को एकसाथ समेटकर आगे ले जाना होगा । वही कवि सर्वश्रेष्ठ है जो वैयक्तिक और सामूहिक दोनों की धरातलों पर बडे ही प्रभावशाली ढंग से गतिशील है । जिस प्रकार व्यक्ति के लिए बाह्य एवं अन्दर का सामंजस्य ज़रूरी है उसी प्रकार कविता के श्रेय को बढाने के लिए कवि को वैयक्तिकता एवं सामाजिकता में तालमेल स्थापित करना होगा ।

नयी कविता का जनवादी परिप्रेक्ष्य

साठोत्तरी हिन्दी कविता में, अन्य साहित्यिक विधाओं की तरह जो आधुनिकतावादी धारा आई उसे प्रयोगवाद का अगला कदम मानना चाहिए । इसमें नए किस्म की आत्मचेतना केन्द्रवर्ती बिन्दु का भाग अदा करती है ।यह आत्मचेतना छायावादी मूल्यों को नकारकर व्यक्ति सत्य और सामाजिक सत्य के एकीकरण को तलाशती हुई व्यक्ति स्वातंत्र्य के मूल्य के नारे में लुप्त हो गई ।

---

1. मनोज सोनकर - समकालीन कविता - संप्रेषण विचार और आत्मकथ्य - वीरेन्द्र सिंह - पृ. 162 - प्र.सं. 1987 - कवि के लिए जीवन पहले आता है वाद बाद में (लेख)

आधुनिकतावाद, नगरीकरण की तेज़ प्रक्रिया, पूँजीवादी लोकतंत्र के प्रति मोहभंग, अस्तित्ववादी दर्शन, पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप प्रादुर्भूत हुआ । पारंपरिक सामाजिक मूल्य निःशेष हो गए और परिणामस्वरूप व्यक्ति अन्तर्मुखी हो गया । आठवें दशक में इस आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के खिलाफ एक प्रतिक्रिया हुई । जनवादी विचारधारा उसी की अग्रिम कड़ी है । इसका जन्म और उन्नयन प्रतिक्रियावाद के तहद हुआ । पश्चिम में कट्टर मार्क्सवादी मान्यताओं के विरोध में नव-वामपंथी का उदय हुआ जो साहित्य में व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करके चलता है । जनवादी धारा इस नव-वामपंथी से प्रभावित है । जनवादी चेतना ने जनभाषा, लोकजीवन से ताल्लुक वर्ग संघर्ष की चेतना आदि को अपनाया और उसी के तहद काफी विकास भी हुआ ।

जनवादी काव्य से तात्पर्य असल में सामन्तवादी विरोधी कविता से हैं, लेकिन थल, काल और समय की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक चुनौतियों के अनुरूप इसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है । अर्थात आज की परिस्थिति को सामने रखकर यह घोषित कर सकते हैं कि जनवादी कविता व्यवस्था विरोधी कविता है । असल में "जनवादी काव्य मुट्ठी भर शोषक-शासक वर्ग के प्रति विशाल जनसमुदाय की मुक्ति का उद्घोष है ।"[1]

आज की सामाजिक स्थितियों में साहित्य को मनुष्य की वाणी बनना चाहिए । इसीलिए यह बात ठीक है कि "जनवादी कविता जनता की ज़िन्दगी के बीच से उगते हुए उसकी आशाओं- आकांक्षाओं, उसके स्वप्नों

---

1. अनूप वशिष्ट - जनवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ (लेख) - दस्तावेज़ 42, जनवरी-मार्च 1989 - संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

तथा संघर्षों को वाणी देता है ।"[1] अतएव यह भी सही है कि साहित्य और कला के क्षेत्र में शोषित उत्पीडित वर्ग की भावनाओं, संकल्पों, सुख-दुःख, जय-पराजय और संघर्ष की यथार्थ अभिव्यक्ति का नाम जनवाद है ।

जनवादी कविता में समाज की रूढमूल दमनकारी शक्तियों व नीतियों का खुलासा रहता है । आज की भयावह जीवन के यथार्थ का चित्रण भी रहता है । टूटकर, घुटकर, लहूलुहान होकर अपनी हक के लिए एक जुट होनेवाले लोग जनवाद की केन्द्रबिन्दु है । वैसे वह समूचा साहित्य जो जनता की हितकाँक्षी है, जिसकी वर्गीय पक्षधरता शोषित वर्ग के साथ है वही जनता का साहित्य है जनवादी साहित्य है ।

नए कवि अधिकांशत: मध्यवर्ग की देन है । इसीलिए वे यह अच्छी तरह से जानते हैं कि वर्ग वैषम्य क्या है । इस सत्य से वाकिफ होने के कारण वे हमेशा अपनी पक्षधरता स्पष्ट कर देते हैं । इस दौर के जनवादी कवि ने भी ठीक यही किया है और उन्होंने करोडों मेहनतकश जनता के संघर्ष में सहभागी होकर उनके साथ अपनी प्रतिबद्धता को घोषित किया है ।

व्यवस्था के दमन और तानाशाही का चित्रण जनवादी कवि अपनी कविता वस्तु बना लेता है । औसत भारतीय को किस तरह लूटा जाता है, उसका शोषण किया जाता है, किस तरह उसका जीना नामुमकिन कर दिया देता है । जनवादी रचनाकार इस स्थिति का न केवल द्रष्टा है बल्कि भोक्ता है । आज़ादी, लोकतंत्र, संविधान और कानून के खोखलापन का

---

1. डा. शिवकुमार मिश्र - सं. सव्यसाची अंक-20, अक्तूबर 1982 - जनवादी साहित्य विशेषांक - पृ. 2। "उत्तरार्द्ध"

उद्घाटन इसीलिए जनवादी कवि बिना हिचक के करता है । हमारे जीवन को दबोचने के लिए, हमें निगलने के लिए ये सतरंगी ओढ़कर अवसर की तलाश में है और मौका पाते ही हमारा नामोनिशान मिटा देते हैं । हम निस्सहाय होकर देखते रहेंगे ।

जनवादिता को विश्वास है कि जिस दिन वे संगठित होकर अपने हक के लिए आवाज़ उठाएगा उस दिन दुनिया का कोई भी तानाशाह उनकी आवाज़ को दबा नहीं सकेगा । इसी आशा, विश्वास और आकाँक्षा के साथ वे क्रांति का उद्घोष करते हैं । मुक्तिबोध इस क्रांतिकारी चेतना को अंतिम निर्णायक स्वर कहते हुए पुराने गढ़ों व मठों को तोडने के संकल्प को दृढता से दुहराते हुए लिखते हैं -

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे ।
तोडने होंगे ही मठ और गढ सब
पहुँचना होगा दुर्गम पहाडों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हमको
तीली झील की लहरीली धाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक ।

सर्वेश्वर की जनवादी कविताएँ

तीसरा सप्तक में वक्तव्य देते हुए सर्वेश्वर ने लिखा - "जो सत्य है उसे चुपचाप अपनाये रहने भर से काम नहीं चलेगा । बल्कि जो असत्य

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 289 - अष्टम सं. 1985

है उसका विरोध करना पडेगा और मुँह खोलकर कहना पडेगा कि वह गलत है ।"[1]
ज़ाहिर है अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर ज़ोर देनेवाला सर्वेश्वर एक संघर्षशील जनवादी रचनाकार है ।

सर्वेश्वर उन रचनाकारों में है जो ज़िन्दगी की खोज करते हैं, जो निरंतर संभावनाओं से भरी है । सर्वेश्वर की रचनाधर्मिता का व्यापक आधार फलक जीवन के बहुत अंशों के सहारे वास्तविक जीवन का एहसास हमें कराता है । उन्होंने अपनी कविता के द्वारा मानवीय चेतना को ऊर्जा और ऊष्मा दी है । "मनुष्य" को केन्द्र में रखकर और नियति से टकराते हुए कविता में जो पौरुष व्यक्त होना चाहिए वह सर्वेश्वर में है ।[2]

मानवीय तत्व सर्वेश्वर की कविता का केन्द्र तत्व हैं । इसलिए मानवीय संवेदनाओं को पूरी अर्थवत्ता प्रदान करने की कोशिश ने सर्वेश्वर को एक निर्मम व्यंग्यकार ही बनाया हैं । कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा - "व्यंग्यकार अपने विवेक से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को न सह पाने के कारण अपने भीतर के सत्य की आग का अनुभव होने के कारण विद्रोही हो जाता है । सर्वेश्वर इसी बोध के विद्रोही कवि हैं ।"[3]

सन् 1935-1940 के आसपास हिन्दी में एक यथार्थवादी काव्य-शैली का रूपायन हुआ जिसकी पृष्ठभूमि में आधुनिक भावबोध कार्यरत है । इस आधुनिक भावबोध को लोक चेतना का साथ मिला तब कवि अपनी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ. 208 - प्र. 1959
2. डा. सन्तोषकुमार तिवारी - नये कवि एक अध्ययन - पृ. 204 - प्र. 1991
3. कृष्णदत्त पालीवाल - सर्वेश्वर और उनकी कविता - पृ. 31 - प्र. 1992

जड़ों के प्रति काफी सचेत हुए और कविता में अपनी उस उत्सुकता को दर्शाने का प्रयास भी होने लगा । "इसमें सन्देह नहीं कि आगे चलकर नयी कविता ने सामाजिक चेतना और आत्मसंघर्ष के बीच एक तनाव-भरा सन्तुलन विकसित करने की कोशिश की, जिसके परिणामस्वरूप रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, श्रीकान्तवर्मा, केदारनाथ सिंह और कुंवर नारायण की कविताएँ एक विशिष्ट काव्य मुहावरा उपलब्ध करा सकी ।"[1] सच तो यह है कि सर्वेश्वर एक ऐसे कवि है जिन्होंने यथार्थवादी कविता के नज़दीक आने की कोशिश अपनी कविताओं के द्वारा बहुत पहले ही शुरू की । इस यथार्थवादी दृष्टिकोण ने सर्वेश्वर के रचनामानस में जनवादिता का बीज बोया और समसामयिक विडम्बनापूर्ण स्थितियों ने उसे अंकुरनेकीऊर्जा प्रदान की । उन्होंने जनपक्षधरता को कवि कर्म के आन्तरिक अनुशासन के रूप में स्वीकार किया । इस आन्तरिक अनुशासन ने कवि को "जन" के बीच खड़ा कर दिया और उनमें एक बनकर, आम आदमी की ज़िन्दगी जीकर विडम्बनाएँ झेलकर कवि ने अपनी कविता को पूर्णत: जनचरित्री बनाया । व्यापक सामाजिक चिन्ता, यथास्थिति को बदलने की तीव्र आकाँक्षा, आम आदमी के संघर्ष से जुड़ने की इच्छा ने इसमें प्रेरक शक्ति के रूप में काम किया ।

सर्वेश्वर की जनवादी कविताओं को निम्न प्रकार की श्रेणियों में बाँटकर विश्लेषित किया जा सकता है ।

गरीबी और शोषण

सर्वेश्वर अपनी संघर्षशीलता के कारण अपने समय के समर्थ कवि रहे हैं । "जिस बाह्यलोक और अन्तर्लोक की परस्पर टकराहट से उद्भूत रचनात्मक प्रश्नशीलता के उद्रेक से सर्वेश्वर की कविताएँ शुरू होती है, वहीं पर

---

1. परमानन्द श्रीवास्तव - शब्द और मनुष्य - पृ. 126 - प्र.सं. 1988

वे समाप्त भी हो जाती है । सर्वेश्वर की विफलता उनकी पीढी की विफलता है और उनकी उपलब्धि उनके व्यक्तित्व की उपलब्धि जो नयी कविता की भी उपलब्धि है ।[1]

कवि के मन में मानवीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा है । अपने चौके से उठते हुए धुएँ में संसार की घुटन को देखनेवाले कवि को विश्वास है कि

ज़िन्दगी मरा हुआ चूहा नहीं है
जिसे मुख में दबाए
बिल्ली की तरह हर शाम गुज़र जाए
और मुंडेर पर
कुछ ख़ून के दाग छोड जाए ।
उससे न तो इतिहास लिखा जाता है
न प्रेम पत्र
उनसे न तो झण्डे रँगे जाते हैं
न रूमाल ।[2]

सर्वेश्वर की कविताओं में जनवादिता लोकजीवन से संपृक्त होकर अभिव्यक्त हुई है । लोक-जीवन के अनेक चित्र सर्वेश्वर की कविताओं को प्रखर बना देते हैं । सर्वेश्वर ने ग्राम परिवेश का चित्र तो अपनी कविता में खींचा है, लेकिन वह रस लेने के लिए नहीं बल्कि शोषित व पीडितों की दयनीय दशा की अंतरंगता को दिखाने के लिए हैं । मामूली आदमी की ऐसी

---

1. मलयज - कविता से साक्षात्कार - पृ. 44 - प्र. सं. 1979
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 92 - प्र. सं. 1978

पीड़ा के चित्र सर्वेश्वर की कविताओं में बहुत हैं । इन कविताओं में परिवेश के साथ उनका लगाव दृढतर हो गया है और उनकी दृष्टि आत्मपरक से वस्तुपरक होती गयी है । जैसे

यह खेतिहर मज़दूर भूख से मर गया
यह चौपाये के साथ बाढ में बह गया
यह सरकारी बाँध की रखवाली करता था
लू में टपक गया ।

भारतीय ग्रामीण ज़िन्दगी में घटित त्रासदी के ब्यौरे अपने आप में क्रूर ऐतिहासिक वास्तविकता का बयान है । "चुपाई मारो दुल्हन" नामक कविता में नाटकीय और गीतात्मक शैली में "दे रोटी, दे धोती", "दे दे पैसा और गीता", "दे आज़ादी और दे मौत" कहते हुए समूची विसंगतियों पर कवि प्रहार करते हैं । देश की गरीबी और शोषण का जीता-जागता प्रतीक है यह "दुल्हन" ।

दे गीता ?
लगे कोर्स में
ऐसा क्या हो गया सुभीता
हाथ में थैली
और पैर पर टोपी धर
फैलाते हैं सब अपना गोरख धन्धा
आँख खोलनेवाले को कहते अन्धा
मैं भी दौडी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 24 - प्र.सं. 1973

पास न थी पर कानी कौडी
मुँह लटकाए मिले राह में
मुझे किशन-बलदेउ आ ।"[1]

आज के ज़माने में जीता जागता आम इनसान तुच्छ बन चुका है । इसकी ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं ।

तुम धुल हो
पैरों से रौंदी हुई धुल ।[2]

इस विभीषिका का विकराल चित्रण करके कवि ग्रामीण जनता की दयनीय स्थिति को दर्शाना चाहते है । ग्रामीणता का मोह सर्वेश्वर में सतही नहीं है । उनके लिए गाँव पिछड़ेपन का अच्छा-खासा प्रतीक है । जहाँ जीवन का चटपटाता रूप उपलब्ध है । जिस भूप्रदेश को पुरी तरह से छोड दिया गया उसको आत्मीय स्वरों से सर्वेश्वर ने उठाया है ।

सर्वेश्वर की "खूँटियों पर टँगे लोग" नामक संग्रह में लु-शुन से संवाद स्थापित करने की कोशिश अन्तिम दो कविताओं में की गयी है । सर्वेश्वर लु-शुन को अपने "गाँव का सँपेरा" दिखाने निकलते हैं । इस बहाने वह सामाजिक त्रासदी की लंबी गाथा को प्रस्तुत करते हैं जो गाँव की ज़िन्दगी में घटित हो चुकी है । जैसे -

दुसरों द्वारा अपनी फसलें काट ले जाने की
उस समय तुमसे शिकायत न करें
और न जिस्म पर

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 405 - प्र. 1959
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 29 - प्र. 1976

बन्दूक के छर्रों के घाव दिखायें
और न अपने जले हुए घरों की
न बेइज्जत की गयी औरतों की
बाबत तुम्हें कुछ बतायें ।[1]

इस कविता में सामन्तवाद और पूँजीवाद के शिकंजे में दबी हुई असहाय भारतीय ग्रामीण जनता के जीवन संघर्ष के ब्यौरे हैं । संघर्ष भरित, त्रासदीस जीवन जीने के बावजूद इन में अदम्य जिजीविषा शेष है । "जब यह कार्यक्रम जो सपेरा का है, शुरू होता है तब लोग बड़ी उत्सुकता के साथ यों आते हैं और

चारों ओर से लोग
लपकते हुए आते थे
और इस पेड की रोशनी में
रंग बिरंगे हिरणों की तरह बैठ जाते थे ।[2]

लोग बदल चुके हैं । सामाजिक व्यवस्था और उसकी हैवानगी ने आम आदमी को उसके चंगुल में फँसाकर खून चूस रही है । गन्दी बदबूदार व्यवस्था इनके बच्चों का काल है । जिन लोगों ने इस व्यवस्था का विरोध किया वे जेल में हैं। इस तरह की शोषित एवं तुच्छ जीवन जीने के लिए लोग विवश हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों में टँगे लोग - पृ. 128 - प्र. 1982
2. वही - पृ. 126

मेरे चारों तरफ
कुएँ का यह घेरा
संकरा होता जा रहा है
मेरे जिस्म को ही नहीं
मेरी आत्मा को छूने लगा है
अब कुचला जाना मेरी नियति बनता जा रहा है ।[1]

सर्वेश्वर का यथार्थ बोध तीव्र संवेदनात्मक गहराइयों से युक्त है । इसलिए उसकी तिक्तता और असुन्दरता रचनाओं में सर्वत्र व्यक्त हुई है । जीवन संघर्ष की कटुता और जीवन की अर्थहीन अवस्थाओं के प्रति कवि सचेत है । आज का जीवन अभावों से घिरा है और उसकी नींव रेत की है । लेकिन विवेक से जीवन की सार्थकता जानी जाती है । सर्वेश्वर एक ऐसा कवि है जिनमें विवेक के साथ जीवन को, देखने और परखने की क्षमता है । ज़िन्दगी में मौजूद अभावग्रस्तता को, गरीबी को सर्वेश्वर ने यों प्रस्तुत किया है -

गरीबी हटाओ सुनते ही
वे कब्रिस्तानों की ओर लपके
और मुर्दों पर पड़ी वे चादरें उतारने लगे
जो गंदी और पुरानी थीं,
फिर वे नयी चादरें लेने चले गये
जब लौटकर आये
तो मुर्दों की जगह गिद्ध बैठे थे ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 67 - प्र. 1982
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 43 - प्र. 1973

तीखी जनवादी दृष्टि के कारण सर्वेश्वर काफी प्रखर बन गये हैं । देश की गरीबी से वे सचमुच दु:खी है । उसके कारणों की छानबीन करने के बाद उन्हें मालूम होता है कि इस गरीबी और लाचारी का कारण खुद यह समाज है । इस नग्न सत्य को स्वीकार करते हुए कवि कहते हैं -

क्यों न कल संसद भवन के सामने
हम प्रदर्शन करें कपडे उतारकर
देश की दरिद्रता पर ।[1]

देश की इस प्रकार की दयनीय अवस्था के बारे में सोचने के बाद कवि इस नतीजे पर पहुँच जाते हैं कि सबसे पहले आदमी को अपनी हैसियत को पहचानना होगा । आम आदमी आज व्यवस्था और समाज का खिलौना बन चुका है । उसे ये दोनों अपनी मनमानी ढंग से मोड रहे हैं और आदमी की खुद की पहचान भी नहीं हो पा रही हैं । आदमी को सबसे पहले अपने आप को पहचानना होगा । उसका समय आ गया है ।

समय आ गया है
इन्हें आदमी और गधे का
रिश्ता समझाना होगा
इन्हें आदमी होने का अहसास कराना होगा ।[2]

इन पंक्तियों में एक सत्य छुपा हुआ है, वह है कि समाज आदमी और गधे में कोई खास फर्क नहीं दीखता है । समाज ने उसे एक ही दर्जा दिया है । उसे बदलना होगा । आदमी को आदमी होने का गौरव प्रदान करना होगा ।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 116-117
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 13 - प्र. 1976

सर्वेश्वर ने अपनी कविता में कोई नया विषय तो प्रस्तुत नहीं किया है, फिर भी गरीबी और गरीबों का शोषण हर समय की कविता का वस्तु विन्यास ही है । सर्वेश्वर उसे मानवीय संदर्भ में पहचानना चाहते हैं । उक्त मानवीय संदर्भ का बृहत्तर समाज शास्त्रीय पहलू भी है जिसके बहाने जब इन मुद्दों पर प्रकाश डाला जाता है तो एक सामाजिक समस्या अपनी गंभीरता के साथ प्रस्तुत होती है । सर्वेश्वर का उद्देश्य समस्या का संकेत देना नहीं बल्कि समस्या का अंतरंग जानना रहा है ।

संत्रस्त जीवन

शोषण, गरीबी, बीमारी आदि ने असहाय ग्रामीणों को अपने कब्जे में किया है, और उस बन्धन को तोडना नामुमकिन सी हो गयी है । इस प्रकार की एक विकराल जीवन संदर्भ से इन गरीब, अनपढ़ लोगों को गुज़रना पड़ता है । वे विवश होकर इस संत्रस्त जीवन को झेल रहे हैं और जीने की अदम्य इच्छा उनके जीवन नैयों को आगे धकेलते हैं ।

इस विकराल सामाजिक स्थिति को सँपेरे की उन्मत्त संगीत और नाच के नशीली वातावरण में प्रस्तुत करने की कोशिश सर्वेश्वर ने की है । इसीलिए कवि गाँव का सपेरा दिखाने के बहाने लु-शुन को गाँव की त्रासद जीवन की ब्यौरा देते हैं । घुडकी सहकर, अपमानित होकर छाया की तरह जीने के लिए अभिशप्त ये ग्रामीण जन उधार और कर्जों का भार सहने में असमर्थ भी है । इतना भी नहीं इनका कोई ठिकाना भी नहीं है इसलिए कवि लु-शुन से कहता है -

इनमे से किसी एक का भी पीछा
तुम मत करना
हो सकता है
वे घर जाने की रीति निभा रहे हों

और कहीं न जा रहे हैं ।
हो सकता है
जहाँ जा रहे हों
वहाँ घर जैसा कुछ न हो ।[1]

इससे साफ ज़ाहिर हो जाता है कि कितना अभावग्रस्त, अभिशप्त ज़िन्दगी वे बिताते हैं ।

कवि हमेशा समाज में परिवर्तन का प्रचारक हैं और वे यह भी स्वीकार करते हैं कि परिवर्तन खुद को बदलना है । लेकिन इस बदलाव के अवसर पर मानव को नियति से टक्कर लेना पडता है । और कभी कभी निराश भी होना पडता है । जैसे -

बायें हाथ में ले
अपना कटा हुआ दाहिना हाथ
फेंकता हूँ पत्थर इस सडे-गले समाज पर
क्योंकि वही मेरे पास खडा है ।[2]

यहाँ कवि ने समाज के लिए "सडे-गले" शब्द का प्रयोग किया है जो शत प्रतिशत सही है । आज की हमारी दुनिया इतना विकराल है कि उसकी बदबू से मनुष्य बेसुध हो जाता है । इसीलिए आदमी के मन को छोटा बनानेवाले हर शक्ति से कवि नफरत करते हैं, और बुझी निगाहों को रोशन करने के लिए गीली लकडियाँ सुलगाती हैं ।[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 130
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 127 - प्र.सं. 1978
3. वही - पृ. 60

सर्वेश्वर की कविताएँ समाज संपृक्त व्यक्ति मन की यथार्थ अभिव्यक्ति है । कवि की वैयक्तिक चेतना जिन-जिन स्तरों से होकर गुज़रती है, उसका स्वानुभूत चित्र प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य है । कवि अनुभव करता है कि युग की समस्याओं ने मनुष्य को व्यथा और अकेलेपन से भर दिया है । हर ओर सामाजिक उदासीनता और संत्रास व्याप्त है । समाज, संस्कृति और दर्शन का रूप ही बदल गया है । सर्वेश्वर के अनुसार त्रास अकेला मनुष्य ही नहीं बल्कि समाज भी झेलता है । वह मानता है कि इस यांत्रिक दुनिया में न ईश्वर है न मानव है, दोनों का गौरव समाप्त हो गया है ।

हर क्षण एक दर्पण टूटता है
एक आकृति मरती है
चाहे वह ईश्वर की हो
या आदमी की ।[1]

कवि का विचार केन्द्र मनुष्य और उसके जीवन और व्यवस्था से उत्पन्न प्रश्नों से जुडा है । आज भारतीय परिवेश में मनुष्य तुच्छ बन चुका है । उसकी अपनी कोई हैसियत नहीं, पूछनेवाला कोई नहीं । लेकिन आधुनिक मनुष्य की सामाजिक चेतना संवेदना के धरातल पर कविता की बुनियाद है । वही सर्वेश्वर की कविता का विचार केन्द्र है और उसमें समाज और व्यक्ति दोनों महत्वपूर्ण है । व्यक्ति न समाज से अलग है और न समाज को ही व्यक्ति के अभाव में कोई अर्थवत्ता ।

युग जीवन के संदर्भ में सर्वेश्वर ने अपने युग के विघटन, दर्द, पीडा, अनास्था, विवशता, विजडित स्थितियों और अकेलेपन का गहरा और तीखा अनुभव किया है । "शांतिमय तुम हो" में कवि कहता है -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ.47

दर्द के महानगर से कहो
सामने मेरे न चीखें
मैं अकेला हूँ ।[1]

जीवन के यथार्थ की विषमता से जन्मा यह अवसाद अनुभव की तटस्थ व्यंजना के साथ अभिव्यक्त हुई है । सर्वेश्वर का समस्त काव्य जीवन विद्रूपताओं एवं विसंगतियों को सीधे सीधे अभिव्यक्त करता है । इन विसंगतियों का अर्थ सामाजिक भ्रष्टाचार, राजनीति का लंपटपन, विकृतियाँ, कुरूपताएँ, अमानवीकरण आदि सभी से हैं । इन भ्रष्टाचारों को कवि भली भांति जानता है । इन तमाम स्थितियों को दर्शाने के कारण सर्वेश्वर की कविता नये जीवन का एक दस्तावेज़ बन गयी हैं ।

समसामयिक सच्चाई की जटिलताएँ

गाँव में कई तरह के अभाव मौजूद है । इन अभावों से अनेक जटिलताएँ पैदा होती है । कालानुसार इनमें विकरालता की कमी या ज़्यादती देखी जाती हैं । समसामयिक सच्चाइयाँ और जटिलताएँ मनुष्य के जीवन में हमेशा अपनी बर्बरता दिखाकर प्रस्तुत होते हैं । गाँववालों की करुण ज़िन्दगी का पर्दाफाश करके आज की सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास कवि ने किया है । जब ज़िन्दगी मौत से बदत्तर हो जाती है और उसे ढोने की विवशता मानव को सहना पड़े तो कितना दर्दनाक होगा । इस अवस्था से पूरी तरह वाकिफ सर्वेश्वर लिखते हैं -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 292

जब लाश घर में पडी हो
तो आँगन के चिड़ियों की
चहचहाहट नहीं सुनायी देती
और यदि सुनायी भी दे जाये
तो कितनी करूण होती है
यह तुम जानते हो ।
इसलिए मैं तुम्हें
अपने गाँव का सपेरा दिखाना चाहता हूँ ।[1]

सामाजिक जटिलताओं ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है । समाज की आन्तरिक व्यथा सामूहिक उदासीनता और संत्रास में बदलती है । इसीलिए सर्वेश्वर सौंदर्य को विद्रुपता तक ले जाते हैं । क्योंकि यह विद्रुप ही आज का यथार्थ है । इन सबके बावजूद मनुष्य अपने आप में मस्त है, सब कुछ सहने के लिए तैयार है । क्योंकि आज का मनुष्य इस तथ्य से वाकिफ है कि कठिन परिश्रम करने पर हाथ में कुछ मिलनेवाला नहीं है । इसीलिए सर्वेश्वर ने लिखा -

लिपटा रजाई में
मोटे तकिए पर धर कविता की कापी
ठंडक से अकडी उँगलियों से कलम पकड
मैं ने इस जीवन की गली गली नापी
हाथ कुछ लगा नहीं
कोई भी भाव कमबख्त जगा नहीं ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 13।
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 328

एक जनवादी कवि होने के कारण सर्वेश्वर सामयिक सच्चाई से परिचित है । मनुष्य के अन्दर छिपे बैठे आततायी जानवर को कवि दर्शाते हैं और कवि चेतावनी देते हैं कि यह जानवर मौकापरस्त है और उचित अवसर पाकर वह हम पर टूट पडेंगे । इसलिए आदमी को सावधान रहना चाहिए । अगर आदमी उससे बचना चाहे तो भी संभव नहीं है । क्योंकि वह हर व्यक्ति के भीतर बैठा है । लेकिन जब वह गुर्राता है तब यूँ ही देखते रहने से कोई फायदा नहीं । बल्कि एक होकर मशाल उठाना चाहिए । तब भेडिया भागेगा । क्योंकि उस मशाल की शक्ति से भेडिया भयभीत हो जाते हैं और सिर्फ आदमी ही मशाल जला सकता है । विद्रोह की आग सुलगा सकती है । जैसे सर्वेश्वर ने लिखा -

भेडिया गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ
उसमें और तुम में
यही बुनियादी फर्क है
भेडिया मशाल नहीं जला सकता ।[1]

आदमी को हमेशा समझना होगा कि उसके अपने बीच से कभी भी भेडिया वापस आयेगा । तब उसका वंश बढने लगेगा । इसलिए उस ताकतवर आततायी से लडने के लिए हमेशा तैयार रहना है । क्रांति की उमंग को बरकरार रखना है । जब कभी भेडिया गुर्राकर वापस आता है तब आदमी को साहस के साथ एक होकर मशाल लेकर खडा होना है । यही सर्वेश्वर की जनवादी चेतना का आधारभूत सत्य है ।

"काठ की घंटियों" से शुरू होकर "खूँटियों पर टंगे लोग"

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 23

तक की काव्य यात्रा में सर्वेश्वर सामयिक सच्चाईयों के एकदम करीब नज़र आते हैं । खूँटी पर टँगे कोट की तरह आदमी सामाजिक सच्चाई रूपी खूँटी पर टँगा है । बिलकुल निरर्थक । और इस प्रतीक्षा में कि सार्थकता प्रदान करने कोई न कोई ज़रूर आयेगा । और जब यह सार्थकता मिलेगी तब व्यक्ति अपने से परे सोचना शुरू करेगा और समाज को अपना हिस्सा मान लेगा । तब

उसकी हर चोट मेरी हो
उसका हर घाव पहले मैं झेलूँ
उसका हर संघर्ष मेरा हो
मैं उसके लिए होऊँ
इतना ही मेरा होना है ।[1]

स्वतंत्रता की संकल्पना

सर्वेश्वर युगबोध के प्रति सदैव सचेत है । इसलिए कवि की मूल्य दृष्टि गहरी है । एक प्रकार की जिजीविषा, स्वातंत्र्य का संकल्प कवि की रचनाधर्मिता का आधार है । यह कवि का मूल्य संकल्प है, निराशा की अपेक्षा आशा के वे पक्षधर हैं । यह मूल्य कर्मण्य और सार्थक जीवन को महत्व प्रदान करता है । इतना ही नहीं कवि को पूर्ण विश्वास है कि स्वातंत्र्य का मूल्य मनुष्य की नस नस में वर्तमान है और उसे कुचलना असंभव है । यथा -

साँप का फण नहीं है यह आज़ादी की भावना
जिसे तुम कुचल दोगे
वह एक सुगंधि है
जो एक सड़ते नाबदान में
सारी दुनिया के सुअरों के घुंघुआते बैठ जाने पर भी
नष्ट नहीं होगी ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ.22
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ.66

कवि के मन में आज़ादी की क्या मान्यता है, उसकी क्या मायना है यह इन पंक्तियों से विवृत होता है । यह एक स्वर्णिम कल्पना मात्र नहीं है बल्कि एक विराट संकल्पना है । इस संकल्पना को बरकरार रखने की कोशिश में आदमी को बहुत कुछ खोना पडेगा । सर्वेश्वर ने खुद कहा है -

कुछ बचाने के लिए
कुछ खोना पडता है
जो खोने से डरता है
वह बच नहीं सकता ।[1]

आज़ादी को कायम रखना चाहे वह देश की हो या मन की आदमी का पहला कर्तव्य है । उससे ज़रा भी विलगित होने का अर्थ है सबकुछ का नेस्तनाबूद हो जाना । इसलिए काफी होशियारी व सावधानी की ज़रूरत है । एक निडर मन की आवश्यकता है ।

मेरी सूरत हो सच्चाई की सूरत
मेरी हर सास आज़ादी की मूरत
हिमालय-सा बढाए बाँह निर्भय
मैं हर सीने का हर पत्थर उठाऊँ ।[2]

सर्वेश्वर की मान्यता है कि "हर मौत जीवन को एक नयी राह दिखाती है । "इसीलिए कवि हमेशा इस बात पर ज़ोर देता है कि यह ज़िन्दगी एक यात्रा है और वहाँ कुछ नष्ट होने का मतलब कुछ मिलना है ; और

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ, 34
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 70

जहाँ हर थकान
एक नयी स्फूर्ति है
जहाँ परिवर्तन का अर्थ
मेरा खुद का बदलना है ।
जहाँ हर अनुभूति
ईश्वर की मूर्ति है ।[1]

यहाँ सर्वेश्वर की आशावादी दृष्टि का परिचय हमें प्राप्त होता है ।

व्यवस्था विरोध

आज का समाज इतना विकृत हो चुका है कि मनुष्य का अस्तित्व खतरे से खाली नहीं है । व्यवस्था और सामाजिक दबाव को झेलकर जीने की आदत सी उसे हो गयी है । लेकिन कभी-कभी मनुष्य इसके खिलाफ आवाज़ उठाने की कोशिश करता है । जिस समाज में जहाँ सब कुछ उल्टे-पुल्टे है, सब कुछ संकीर्ण हैं, शेर चूहे की और चूहे शेर की बोली बोलते हैं, खरगोश चिंघाडते हैं, हाथी झींगुरों की तरह सिर मारते हैं, चिडियाँ गीदडों की तरह रोती है मुर्गे भेडिये की तरह गुर्राते हैं वहाँ की ज़िन्दगी कितनी जटिल होगी । अर्थात हर एक जीव अपनी अस्मिता खो चुकी है और बने रहने के बोध के साथ मानव ज़िन्दा है इसलिए उन्हें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता और अपनी ही चीख गैर की लगती है । इस अवस्था पर वे कुछ कहना चाहते हैं लेकिन अयाचित सामाजिकता उसे यह करने नहीं देती । "छीनने आये हैं वे" शीर्षक कविता में सर्वेश्वर का कथन है -

एक आखिरी बयान
जीने और मरने का

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 41

हम दर्ज कराना चाहते हैं
वे छीनने आये हैं
हमसे हमारी भाषा ।[1]

लेकिन कवि जन से यह आह्वान करते हैं कि -

गलत भाषा में
गलत बयान देने से
मर जाना बेहतर है ।[2]

यहाँ कवि की व्यवस्था विरोधी दृष्टि स्पष्ट होती है ।

सर्वेश्वर की कविता व्यवस्था और सत्ता की निर्ममता के प्रति खुली बगावत है । आज की स्थिति यह है कि लोग अपने ऊपर पडनेवाले छोटे से प्रहार पर ज़्यादा सोचते हैं और निर्मम होकर रहते हैं । सत्ता की शक्ति को, यहाँ तक ईश्वरीय शक्ति को नकारने की ताकत व्यक्ति अर्जित कर चुकी है । पत्थर की मूर्ति में चैतन्य को न देखने पर कवि कहते हैं -

हो सकता है
कल कोई कुत्ता इस पर
पेशाब करके चला जाय
पर इससे मुझे क्या ?
मैं बड़े मज़े में
इस पर सिर रखकर सो सकता हूँ
क्योंकि इसमें ईश्वर नहीं हैं ।[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 103
2. वही - पृ. 104
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 87-88

आज की नई पीढ़ी व्यवस्था के खिलाफ लड रही है । अगर रास्ता बन्द है तो, व्यवस्था के खिलाफ लडकर नया रास्ता बनाओ । सम्मिलित ताकत और विचार के सामने व्यवस्था की क्रूरता कभी टिक नहीं सकता ।

भेडिया मशाल नहीं जला सकता
अब तुम मशाल उठा
भेडिए के करीब जाओ
भेडिया भागेगा ।[1]

अव्यवस्था हमेशा समाज में मौजूद है । ताकतवर सब कुछ हडप लेता है । कमज़ोर उच्छिष्ट से संतुष्ट है । इस गैरबराबर व्यवस्था को तोडना होगा । इसलिए जनवादी कवि सर्वेश्वर कविता में परिवर्तनकारी नए विचारों की मशाल जलाता हैं । इस सडी गली व्यवस्था को कवि बदलना चाहते हैं । 'लोहिया के न रहने पर' में सर्वेश्वर लिखते हैं -

उसने थूका था इस
सडी गली व्यवस्था पर
उलटकर दिखा दिया था
कालीनों के नीचे छिपा टूटा हुआ फर्श ।
पहचानता था वह उन्हें
जो रँगे चुने कूडे के कनस्तरों से
सभा के बीच खडे रहते थे ।[2]

यह विद्रोही चिन्तन कवि की समस्त काव्य यात्रा में वैचारिक भूमिका के रूप में विद्यमान है । अनुभवों के खौलते कढाहे को वे जैसे के तैसे प्रस्तुत करते हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 23
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 103

क्रांति चेतना का आह्वान

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना जनता के पक्षधर, क्रांतिचेतना के पुरोधा जनवादी कवि है । वे जन को उनकी कमज़ोरियों को तोडने का आह्वान करते हैं । उसके लिए हर एक चीज़ को माध्यम बनाने के लिए वे तैयार हैं । तब कवि की जनक्रांति की चेतना भी व्यक्त हो जाती है । कभी-कभी लगता है कि कवि जिस क्रांति की बात करते हैं वह वर्तमान परिवेश में कठिन लगती है । परन्तु सर्वेश्वर आशावादी दृष्टि के साथ क्रांति की प्रतीक्षा करते हैं । मनुष्य की शक्ति पर, परिवर्तन लाने की उसकी क्षमता पर कवि को पूरी आस्था है । क्रांति की भट्टी में कूद पडें तो सब कुछ बदलाने की ताकत आदमी खुद-ब-खुद अपनाएगा । इसी वजह से कवि ने लिखा -

कडकती बिजली है
दिलों में, बस ।
हर अंधेरा खुद
रोशनी को जन्म देता है
अंधेरे में निकल पडो
तो अंधेरा अंधेरा नहीं रह जाता ।[1]

सर्वेश्वर की जनवादी चेतना उसकी तीव्रता के कारण क्रांति में ही परिवर्तित हो सकती है । आम आदमी की अभावग्रस्तता, गरीबी, उन पर होनेवाले अत्याचार, सबने मिलकर कवि के मन में क्रांति के बीज बो दी है अपने मन में उमडती उस क्रांति ज्वाला को सर्वेश्वर ने आग और मशाल जैसे शब्दों के सहारे व्यक्त किया है । यह कवि के मन में उमडती जनक्रांति का प्लावन है । जनपक्षधरता को कविकर्म के आन्तरिक अनुशासन के रूप में स्वीकार

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 32

करनेवाला कवि सर्वेश्वर को विश्वास है -

कविता नहीं है कोई नारा
जिसे चुपचाप इस शहर की
सडकों पर लिखकर घोषित कर दूँ
कि क्रांति हो गयी ।[1]

सर्वेश्वर विडम्बनापूर्ण समसामयिक जीवन की साधारणता के एक ऐसे असाधारण कवि हैं जिनकी असाधारतणता साधारणता से न तो कटी हुई कही जा सकती है और न कि बहुत दूर की चीज़ । दोनों में एक विचित्र प्रकार की एकात्मकता मिलती है जिसे उनकी प्रमुख विशेषता माना जा सकता है ।[2] इस तालमेल के कारण सर्वेश्वर की कविताओं में तीखापन है, प्रखर सामाजिक प्रतिबद्धता है ।

"लू शुन और चिडिया" में कवि ने लू शुन को एक प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया हैं । वे, चिडियों में जो "शोषित जन" का प्रतीक, है, व्यवस्था के खिलाफ लडने की शक्ति पैदा कर रहे हैं । सारे जंगल में गोलियों की आवाज़ गूँजती है और अक्सर पेडों में बंधी लाशें मिलती है और वे लाश कमज़ोर और फटेहाल मगर निडर और साहसी लोगों की है । वे मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहते हैं और एक नई दुनिया बनाने की सोच रहे हैं । लेकिन समाज के अधिष्ठाता कहनेवाला लोग उनकी इस कल्पना को जड से उघाडना चाहते हैं और उसके लिए इन्हें मार देते हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 89
2. जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ - पृ. 2

लु-शुन इस विकृति के खिलाफ आवाज़ बुलन्द कराने के लिए चिड़ियों में जोश भरते हैं । लु-शुन का कहना है -

"किसी भी बन्दूक में इतनी गोलियाँ नहीं होती जो करोड़ों का सफाया कर दें । फिर एक साथ टूटने पर बन्दूक थमे हाथ काँपने लगते हैं । वह छूटकर गिर जाती है । मैं यहाँ चिड़ियों को यही सिखा रहा हूँ ।"[1]

कवि का यह दावा है कि शोषित, अनपढ़, लाचार लोग भी बहुत कुछ कर सकते हैं । सत्ता को पलट सकते हैं । लेकिन उनमें एकता का भाव होना ज़रूरी है । इतना ही नहीं उनमें गलत व्यवस्था और सत्ताधारियों के खिलाफ लड़ने की ताकत पैदा करने के लिए कोई पथप्रदर्शक भी ज़रूरी है ।

वैयक्तिक मूल्यों के साथ सामाजिक व राजनीतिक मूल्यों की पहचान अनेक रूपों में सर्वेश्वर की रचनाओं में हुई है । मौजूदा व्यवस्था के कारण किस तरह पूरा समाज मूल्यहीन स्थितियों को स्वीकारता है इसका पता "पोस्टर और आदमी" नामक कविता से मिलता है । इसके अलावा प्रस्तुत कविता युग परिवर्तन और सत्य के लुप्त होने को व्यंजित करता है ।

जो पोस्टर है महज पोस्टर है
वे आज के युग में
आदमी से अधिक बड़े सत्य है
उन्हें सब पहिचानते हैं
वे ही महान हैं ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 135
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 383

इस प्रकार के संक्षिप्त वक्तव्यों के द्वारा कवि व्यापक जीवन सत्य की पहचान कराना चाहते हैं । सर्वेश्वर की कविता में क्रांति की माँग नहीं मिलती । बल्कि उनमें क्रांति के शब्दों का सही सन्निवेश है । इस अर्थ में सर्वेश्वर की कविता मुक्तिबोध की कविता से अलग की कविता है ।

कवि की आस्था

ज़िन्दगी तेज़ रफ्तार से आगे बढ रही है । लेकिन उस रफ्तार को पूरी तरह आज़माने में मनुष्य समर्थ नहीं है । लेकिन वे विश्वास के साथ यह कहते हैं कि हम में भी गति है, हम में भी जीवन है और इतना ही नहीं प्रगति को प्रोत्साहन देने में हम कभी हिचकते भी नहीं । लेकिन वे इस तथ्य से पूर्णत: परिचित है कि

जहाँ हर दर्शन क्रास लेकर खडा था
जहाँ हर साक्रेटीस का ज़हर का प्याला
इनसानियत की ढाल बनकर
टँगा हुआ था ।

वहाँ ज़िन्दगी गुज़रना आसान काम नहीं है । मनुष्य प्रगति चाहते हैं । जो पथप्रदर्शक है उनके असली चेहरे तो नकली चेहरे की आड में है । वे अवसर की ताकत में बैठे हैं । मौका पाते ही वे झपटकर अपनी इच्छित वस्तु हथियाते हैं । इसी कारण से मानव को कडुवे सत्य का सामना करना पडता है । और इतना ही नहीं जो लोग असत्य के चश्मे पहनकर तथ्यों को देखते हैं उन्हें समझाना होगा । जो कल्पना की दीवारें खडा करके उसके इस पार खडे होकर उस पार जाने की उम्मीद रखते हैं । उनका भी सामना करना है । जैसे सर्वेश्वर ने कहा-

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 396

मैं नया कवि हूँ
इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है,
मैं नया कवि हूँ
इसी से मानता हूँ
चश्मे की तले की दृष्टि बहरी होती है
इसीसे सच्ची चोटें बाँटता हूँ
झूठी मुस्कानें नहीं बेचता ।[1]

सामाजिक बदलाव लाना उतना आसान काम नहीं है । उसके लिए शब्दों को आग बनाना होगा, मन को और अधिक दृढ बनाना होगा, शक्ति अर्जित करना होगा, आदमी बनना होगा । और एक दूसरे पर विश्वास करना होगा । और सब कुछ त्यागने का एक भाव जगाना होगा । इतना ही नहीं एक होने की प्रतिज्ञा लेना होगा तब

हम सब एक अंगार है, एक लपट, एक आग
एक शब्द, एक अर्थ, एक राग
एक चरण, एक यात्रा, एक राह,
एक संकल्प, एक नारा, एक चाह
समर्पित
एक क्रांति को ।[2]

सर्वेश्वर की जनवादिता को विश्वास है कि यह क्रांति ही सामाजिक बदलाव लाएगी । उसके लिए आदमी को खुद को सुसज्जित

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ.425
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ.16

करना है । खुद को परिष्कर्तित एवं परिवर्धित करना है । उस आग को हमेशा सुलगने देना है । बुझने का नाम भी नहीं लेना चाहिए । हमेशा उस आग को बनाये रखने पर आदमी को अपने पर विश्वास बढेगा और यह विश्वास एक सामाजिक क्रांति में बदलेगा और पूरे समाज को एक नया रूप प्रदान करेगा । इसी मनुष्य केन्द्रित विचार ने ही सर्वेश्वर को एक जनवादी कवि बनाया ।

स्थिति
आसानी से बदली जा सकती है
केवल थोडी सी हरक्कत ज़रूरी है ।[1]

सर्वेश्वर की सामाजिक चेतना इस तथ्य से अवगत है कि आदमी हर मोड पर अकेला है । लेकिन समाज उस पर टिका है । आदमी को हमेशा अपने आप पर विश्वास होना चाहिए क्योंकि मोर्चे पर उन्हें अकेले लडना है । समाज के लिए प्रत्येक आदमी की लडाई ज़रूरी है । और एक-एक करके इन अनेकों की शक्ति समाज की शक्ति बनेगी । लेकिन इन सबके बावजूद आदमी को अपनी शक्ति का एहसास होना है अपने बाज़ुओं के बल पर आस्था रखना है क्योंकि

सारी ज़िन्दगी
मैं सिर छिपाने की जगह
ढूँढता रहा,
और अंत में
अपनी हथेलियों से
बेहतर जगह दूसरी नहीं मिली ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 39
2. वही - पृ. 69

आदमी को सामाजिक यथार्थ व सामयिक सच्चाईयों से निपटने का साहस व ताकत अर्जित करना है ।

सर्वेश्वर के अनुभव में व्यक्ति और युग जीवन इस प्रकार संपृक्त है कि चरम अनुभूति और संवेदना के क्षणों में भी युग-जीवन के स्पन्दन सम्मिलित हो गये हैं ।[1] सर्वेश्वर एक ऐसे कवि हैं जिन्हें व्यक्तित्व का सही-सही बोध है । कवि अपने व्यक्तित्व को हमेशा समष्टि की व्यापक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार करते हैं ।

सर्वेश्वर की जनवादिता को "जन" की ताकत पर पूरी आस्था है । आम आदमी को सामाजिक व्यवस्था ने अपने पैरों तले कुचल रहा है और आदमी घायल अवस्था में भी चुप है । इसी "चुप" ने समाज को धोखे में रखा है, समाज सोच रहा हैं कि ये बेजान है और इन पर मनमानी कर सकता है लेकिन समाज इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि उनकी रगों में भी खून दौड रहा है और

लेकिन याद रखो
अन्याय और यातना की सीमा
जब पार हो जाती है ।
तो बेजान में ही सबसे पहले जान आती हैं ।[2]

सर्वेश्वर के काव्य ने नई कविता की शक्ति और सामर्थ्य को एक नई अर्थवत्ता प्रदान की है तथा विचारों को ठोस भूमि पर अपनी

---

1. रघुवंश - 'आधुनिक संवेदना के स्तर'- विवेक के रंग-सं. देवीशंकर अवस्थी-पृ. 10
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 3।

प्रामाणिकता सिद्ध की है । उनकी काव्य यात्रा की विभिन्न सीढ़ियों पर चलते चलते यह स्पष्ट ज़ाहिर हो जाता है कि उनमें जनवादी चेतना उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही है । इतना ही नहीं उसकी प्रखर चेतना कविता को एक विराट फलक प्रदान भी करती है । इस विराटता का सर्वेश्वर ने पूरा पूरा लाभ उठाया है ।

सर्वेश्वर अपनी संघर्षशील काव्य पीढ़ी की विरासत के समर्थ और सच्चे कवि हैं ।[1] इस संघर्षशीलता ने सर्वेश्वर को समाज की अंदरूनी परतों को देखने और समझने की शक्ति प्रदान की है । इसी मौलिक संघर्षशीलता के कारण कवि में जो चेतना जागी है उसका तीखेपन उनकी प्रत्येक कविता में आग बनकर धधक रही है । इस आग को

पढ़ो नंगी पीठ पर
धूल जमी पसीने की धार को
क्रांति के शिलालेख सा ।[2]

सर्वेश्वर फौलादी ताकत के आस्थावान कवि है जिन्हें जनचेतना की क्रांतिकारी एवं संकल्प शक्ति पर पूरा भरोसा है । इसी विश्वास के बल पर वे कहते हैं -

---

1. मलयज - कविता से साक्षात्कार - पृ. 55
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 5।

जब पसलियाँ ही किला हो
तब शत्रु छोटा पड जाता है
संकल्प की दुर्लघ्य खाई के बीच खड़ा आदमी
न गिरता है न टूटता है
तोपों के गोले नाकाम हो जाते हैं ।[1]

वस्तुत: इसी जनवादी चेतना ने सर्वेश्वर को समकालीन कविता में स्थान दिलाया है । समकालीन कविता की आन्तरिकता को सर्वेश्वर सरीखे कवियों ने वह आधारभूमि प्रदान की है जिसमें कविता और जीवन की परस्परता कुछ बुनियादी मूल्यों पर आधारित हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 60

अध्याय : चार

राजनीतिक विसंगति के व्यापक संदर्भ में सर्वेश्वर की कविताओं का विश्लेषण

कविता और राजनीति

साहित्य का समाज एवं युगीन परिस्थितियों से गहरा सबंध है । इसलिए साहित्य और राजनीति का पारस्परिक संबंध स्थापित हो ही जाता है । अर्थात् साहित्य का संबंध यदि जीवन यथार्थ से है तो जीवन यथार्थ से संबंधित सभी प्रकरणों से वह अनुप्राणित भी होता है । इस अर्थ में साहित्य और राजनीति एक दूसरे के प्रेरणास्रोत भी हैं । जीवन की विकासात्मक प्रक्रिया में आज राजनीति सबसे महत्वपूर्ण है । राजनीति आज साधारण जीवन के साथ इस प्रकार घुल मिल गयी है कि एक दूसरे को अलग करना कठिन प्रतीत होता है । साहित्य में राजनैतिक स्थिति का कोई न कोई पक्ष वस्तुबद्ध हो ही जाता है ।

कविता एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो किसी भी जीवन परिदृश्य का तिरस्कार नहीं करती । हर युग में कविता समसामयिक प्रश्नों से जूझती रही है । इसलिए तत्कालीन सामाजिक गतिविधियाँ और राजनीति का हर प्रसंग कविता का वस्तुसत्य है । राजनीतिक विषय पर आधारित कविताएँ विशेष संदर्भ में विश्लेषित होने के बावजूद उसकी आत्यन्तिकता जीवन स्पर्शी होने को लेकर है । राजनीतिक कविता की श्रेणी में आनेवाली कविताओं में वैचारिक स्तर काफी गहरा होता है । इसलिए ऐसी कविताओं को विचार कविता की कोटि में भी हम रख सकते हैं ।

नयी कविता-में राजनीति

नयी कविता मनुष्यधर्मी कविता होने के कारण वह मात्र मनुष्य की पक्षधरता ही व्यक्त कर सकती हैं । मनुष्य के सामान्य व्यवहार

क्षेत्र में राजनीति का महत्वपूर्ण स्थान है । इसलिए नयी कविता में राजनीति की भूमिका प्रमुख रही है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले एक वैभवपूर्ण देश की कल्पना लोगों में थी । वह सपना स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद टूटता चला गया । इसका कारण सामाजिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार है । भ्रष्टाचार ने पुराने वैभव को तहस-नहस किया । इसमें अधिकारग्रस्त सत्ता का हाथ था । सत्ता के वर्चस्व के बढते रहने के साथ राजनीति अनैतिकता को प्रोत्साहित करती रही । नैतिकता और मूल्य व्यवस्था का पतन उत्तरोत्तर होता गया जिसमें अधिकार-ग्रस्त सत्ता का ही हाथ रहा है । अतः राजनीति मूल्य विघटन का पर्याय बन गयी । बदलते हुए समाज की यह स्थिति प्रीतिकर नहीं थी । सामाजिक बदलाव के भी कई संकटग्रस्त संदर्भ थे । अलावा इसके राजनीति के मूल्यव्यवस्था को काफी हद तक खराब बना दिया था जिससे मूल्यलक्षी राजनीति का नामोनिशान तक मिट गया है । इसे मोटे तौर पर सांस्कृतिक पतन कहना चाहिए । राजनीति के द्वारा उद्भूत विसंगतियाँ इस प्रकार काव्यवस्तु में परिणत होती गयीं ।

राजनीति, शासन व्यवस्था, शासन व्यवस्था की जटिल स्थितियाँ, प्रतिरोधी दृष्टि, मोहभंग, विरोध, क्रांति का स्वर आदि ऐसी कविताओं के विषय बन गए । जिन नए कवियों ने व्यक्ति मन की सीमाओं के बाहर के विषय को लिया, जिन कवियों को अपने आसपास घटित अवस्थाओं से चिढ भी, जो सदैव सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के प्रति अपनी प्रखर प्रतिक्रिया व्यक्त करना चाहते थे उनकी कविताओं में राजनीति का उपरोक्त सूचित फलक पूरी व्यापकता के साथ हमें प्राप्त होने लगा ।

यह स्वीकृत तथ्य है कि वह स्वतंत्रता बेमानी है जो केवल पूँजीवादी व्यवस्था से जुडी है । यह व्यवस्था मुट्ठी भर लोगों को सुविधा देती है और आज़ादी को गिरफ्त में रखती है । यह समाज को खोखला बना देती है । इस खोखली मानसिकता को दूर करने के लिए, जनमुक्ति का आवाहन करने के लिए कवि को सचेत होना पडता है । सामाजिक या राजनीतिक जडता के प्रति कवि की सचेतना कविता का राजनीतिक संदर्भ ही है । इसलिए मुक्तिबोध लिखते हैं -

कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज में चल नहीं सकता
पूँजी से जुडा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता व्यक्ति के मन को ।[1]

मुक्तिबोध की यह बेचैनी पूरे युग की बेचैनी रही है जिसे मुक्तिबोध ने गंभीरता के साथ व्यक्त किया है । एक प्रकार से यह एक सशक्त संकेत है जहाँ जीवन की बहुत सी स्थितियाँ जडता की शिकार बन गयी हैं । अत: मुक्तिबोध की इस प्रतिक्रिया को राजनीतिक विसंगति के व्यापक संदर्भ में ही पहचाना जा सकता है ।

राजनीति की सभी प्रकार के दाव-पेंचों से कवि परिचित रहते हैं । इसलिए वे संकेत कर देनेवाले भी सही होते हैं । वे बदलाव की, क्रान्ति की इच्छा रखनेवाले, पक्षधर भी होते हैं । कवि ने मुक्तिबोध की कविताओं में

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 292 - अष्टम सं. 1985

राजनीतिक अमानवीयता के विरोध में प्रतिकृत क्रांति चेतना व्यक्त है । कवि को पूरा विश्वास है कि आधुनिक मानव परिवेशजन्य लाचारी से घिरा है और यह स्थिति एक दिन ज़रूर बदलेगी । एक वर्गहीन पूँजीवादी सभ्यता की निरास करनेवाले समाज का उदय होगा । इसलिए मुक्तिबोध "लकडी का बना रावण में" लिखते हैं -

हाय, हाय
उग्रतर हो रहा है चेहरों का समुदाय
और कि भाग नहीं पाता हूँ
मैं मन्त्र-कीलित सा, भूमि में गडा-सा
जड खडा हूँ
अब गिरा, तब गिरा
इस पल कि उस पल ।[1]

इस प्रतिक्रिया को मुक्तिबोध का सांस्कृतिक प्रतिरोध भी कहा जा सकता है ।

नए कवियों के लिए राजनीति जीवन्त सच्चाई रही है । इसलिए राजनीति राहत देने के बजाय आहत करती रही है । भारत के नागरिक नए-नए चालू कदमों को इसलिए स्वीकारते हैं क्योंकि वे उन सब पर आस्था रखते हैं । लेकिन समर्पित दिल से काम करना बहुत मुश्किल है । परन्तु नारे उछालना सत्ताधारी लोग खूब जानते हैं । सच बात तो यह हैं कि नारेबाजी के अलावा वे कुछ जानते नहीं है । इसी कारण से नारों का खोखलापन उजागर हो चुका है । नए कवि इस राजनीति की बनायी शून्यता से परिचित है । यह दरअसल अमानवीय अवस्था है । इसलिए ऐसी अमानवीय अवस्थाओं के खिलाफ आवाज़ उठाना वे अपना कवि-कर्म मानते हैं । केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय आदि की कविताएँ इसके उदाहरण है ।

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 50 - अष्टम सं. 1985

अमानवीयता का शिकार होता है आम आदमी । वह तड़प सकता है । वह बेबस हो सकता है । पूरी तरह से वह झुलस सकता है । लक्ष्यहीन जीवन सामने पाकर वह हताश हो जाता है । ऐसे में केदारनाथ सिंह लिखते हैं -

हम चले जा रहे थे चुप
किन्हीं रास्तों में खोये हुए
चले जा रहे थे हम
कि अचानक हमारे पाँव ज़रा ठिठके
कि अचानक हमने पाया
रास्ता खत्म ।[1]

बिना किसी विरोध के चुपचाप शोषण की विध्वंसात्मक शक्ति को झेलनेवालों के लिए यह आम आदमी अभिशप्त है । भविष्य उसके लिए सुन्दरता का प्रतीक नहीं बल्कि काँटों से भरा है । पूरे देश की स्थिति यही है । सत्ताधारी शिकंजे में मामूली भारतीय जीवन तिलमिला रहा है । सत्ता की शक्ति के बावजूद एक सशक्त संदेह भी कविता में मिलता है । रघुवीर सहाय ने लिखा -

जो पानी के मालिक है
भारत पर उनका कब्जा है ।
जहाँ न दे पानी वाँ सूखा
जहाँ दे वहाँ सब्जा है
अपना पानी
माँग रहा है
हिन्दुस्तान ।[2]

---

1. केदारनाथ सिंह - अकाल में सारस - पृ. 27 - प्र. 1988
2. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ. 5 - प्र. 1975

आज के ज़माने ने एकदम गलत दिशा का चयन कर लिया है जो जीवन की बाज़ी को हार की ओर उन्मुख करनेवाली है । लोकतंत्र हो या प्रजातंत्र दोनों आज लूट का माध्यम है और लोगों को पथभ्रष्ट कर देते है । इसके प्रति केदारनाथ अग्रवाल की प्रतिक्रिया इस प्रकार है -

सब चलता है
लोकतंत्र में
चाकू-जूता, मुक्का-मूसल
और बहाना
भूल-भटककर भ्रम फैलाए
गलत दिशा में
दौड रहा है बुरा ज़माना ।[1]

लोकतंत्र आज एक ऐसा साधन बन चुका है कि सब अपनी मनमाने कर सकते हैं, अपनी स्वार्थपूर्ति कर लेते हैं । कोई भी अंकुश लगानेवाला नहीं रह गया है । निरंकुशता की यह चरम स्थिति है । सत्ता का वर्चस्व आज सब कहीं विराजमान है । इस प्रकरण को सामान्य ढंग से देखा नहीं जा सकता है । सत्ता का यह वर्चस्व वास्तव में अधिकार का सामान्य विस्तार नहीं है । उसमें राजनीति का बिगडा हुआ रूप याने जनतांत्रिकता का गलत संकेत मात्र नहीं है । वास्तव में सांस्कृतिक विघटन के रूप में यह सांप्रदायवादी शक्ति के बढते विस्तार के रूप में इस राजनीतिक परिदृश्य को देखा जाना चाहिए जिसको इस दौर की कविता ने पहचान लिया था ।

---

1. केदारनाथ अग्रवाल - श्रम का सूरज (सं. रामविलास शर्मा) - पृ. 167
प्र. 1986

नए कवियों ने पूँजीवाद का सख्त विरोध किया है । इसलिए वे सर्वहारा वर्ग के दैनिक जीवन के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं । कवियों ने अनुभव किया है कि आज का सत्ताधारी वर्ग पूँजीपतियों के तलवे चाटनेवाला है । यही सांस्कृतिक विघटन है । इसको यथावत् स्वीकार करने का अर्थ है कि कविता का जडवत् होना । कविता सदैव कविता का विरोध करती है । इसलिए इसमें विद्रोह का स्वर होना ज़रूरी हो गया है । विद्रोह का स्वर हमेशा "सत्य" का स्वर होता है । सच्चाई की उस चेतना को साही ने यों प्रस्तुत किया -

दो तो ऐसी निरीहता दो
कि इस दहाडते आतंक के बीच
फटकार कर सच बोल सकूँ
और इसकी चिन्ता न हो
कि इस बहुमुखी युद्ध में
मेरे सच का इस्तेमाल
कौन अपने पक्ष में करेगा ।[1]

पूँजीवाद ने मनुष्य और मनुष्य के बीच संबंधों को मनुष्य और वस्तु के बीच के संबंधों में बदलने की परिस्थितियाँ पैदा की है । मुट्ठी भर पूँजीपति लोग देश की जनता पर जनप्रतिनिधियों के माध्यम से अपना दबदबा बनाए हुए हैं । युगीन राजनीति ऐसी है कि यहाँ सच बोलने पर रोक है, सच बोलनेवालों की जीभ काट ली जाती है । उसे सरे आम गोली मारती है । इस प्रकार की एक अभिव्यक्ति नागार्जुन की इन पंक्तियों में है ।

---

1. विजयदेव नारायण साही - साखी - पृ. 148 - प्र. 1983

बापू की प्रतिमावाली बटनें चमकाते
फौजी वर्दी में तानाशाह पधारेंगे
चौराहे पर वे तुमको गोली मारेंगे ।[1]

युगीन राजनीति में वोटों की सत्ता-महत्ता अक्षुण्ण है । आज की राजनीति कुछ इस प्रकार की है कि हर व्यक्ति यहाँ अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है । उसे दूसरे के हित-अहित की चिन्ता नहीं है । अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कोई भी तरीका अपनाने को भी तैयार है । आज राजनीति एक प्रकार से कुर्सी की राजनीति में तब्दील हो चुकी है । मुक्तिबोध ने राजनीतिक सत्ता के इस रूप को उसके समस्त आयामों के साथ भूल-गलती नामक कविता में प्रस्तुत किया है ।

भूल गलती
आज बैठी है जिरहबख्तर पहनकर
तख्त पर दिल के
चमकते है खडे हथियार उसके दूर तक
आँखें चिलकती है नुकीले तेज पत्थर सी
खडी है सिर झुकाये
सब कतारे
बेजुबा बेबस सलाम में ।[2]

मुक्तिबोध की पैंटसी में दोनों चित्र साफ हो जाते हैं । एक सत्ता के प्रभुत्व का है दूसरा उस बेजुबान आदमी का ।

---

1. नागार्जुन - प्यासी पथराई आँखें - पृ. 56 - प्र. 1982
2. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 3

पर मुक्तिबोध तटस्थता के कवि नहीं हैं वे पक्षधरता के कवि हैं । इसलिए जडतागृस्त स्थितियों को विभिन्न पैंटसियों और मिथकों का प्रतीकवत् प्रकरणों के माध्यम से प्रस्तुत करने के उपरान्त मुक्तिबोध अपनी पक्षधरता के शब्दविन्यास करते हैं जहाँ वे पूरी तरह से आशावादी हैं । उनके मन में सदैव यह धारणा थी कि ऐसे में वर्तमान समाज चल नहीं सकता हैं । इसको बदलना है । मुक्तिबोध हमेशा इस परिवर्तन के स्वप्न को देखनेवाले कवि रहे । इसलिए उन्होंने लिखा है -

हमारी हार का बदला चुकाने आएगा
संकल्प धर्मा चेतना का रक्त प्लावित स्वर
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाधिर
प्रकट होकर विकट हो जाएगा ।[1]

1970 के बाद देश की राजनीति में बिखराव के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता है । 1973 के बाद सारी स्थितियाँ अत्यन्त गंभीर होने लगी और 1975 में देश में आपात् स्थिति की घोषणा करनी पडी । जिन परिस्थितियों में आपात् स्थिति की घोषणा हुई और जिस ढंग से वह देश में लागू की गयी वह नागरिकों के लिए एक आघात सिद्ध हुई है । आपात्काल के समय सत्ता ने जनता के अधिकारों को छीनकर इस को पंगु बना दिया था । रघुवीर सहाय लिखते हैं -

इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद नहीं करता ।[2]

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 5 - प्र. 1965
2. रघुवीर सहाय - हँसो हँसो जल्दी हँसो - पृ. 10 - प्र. 1975

आधुनिक युग में लोकतन्त्र राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना बनकर रह गया है । आज का लोकतंत्र जनता का न रहकर स्वार्थी राजनीतिज्ञों का हो गया है । ये ढोंगी राजनीतिज्ञ सिर्फ कुर्सी की ताक में बैठे हैं । उसे पाने के लिए सारे खिनौने के खेल खेल रहे हैं । सच कहें तो इसी तिकडमबाजी पर आजकी शासन-व्यवस्था टिकी हुई है । इस पर किसी को न दुःख है या न पश्चाताप । बल्कि वे मस्त होकर कुर्सी पर बैठने का आनन्द ले रहे हैं । नागार्जुन ने लिखा -

कुर्सी-कुर्सी गद्दी-गद्दी खेल रहे हैं
घटक तंत्र का भ्रूणपात ही झेल रहे हैं
जोड-तोड के सौ सौ पापड बेल रहे हैं
भारत माता को खाडी में ठेल रहे हैं
इसलिए तो मिलता है सरकारी भत्ता
तिकडम पर हो गयी निछावर शासन सत्ता ।[1]

अपनी कुर्सी को बरकरार रखने के लिए सब कुछ करने पर सत्ताधारी लोलुप तुले हैं । वे अपनी इच्छा से जोडते हैं और तोडते हैं । भारत का संविधान इस यंत्रणा में पिस रहा है । सिर्फ शासन का हकदार बनकर गद्दी पर विराजमान रहने भर से उनको शान्ति नहीं मिलती । कुर्सी के साथ साथ "माल" कमाने की अनेक तरकीब वे सोचते हैं और वे उसे अपनाते भी है । इस ओर संकेत करते हुए नागार्जुन लिखते हैं -

सुना है तुम्हारे नाम पर उगाह रहे हैं लोग चन्दा
बंगाल में, राजस्थान में, दिल्ली में, कलकत्ते में
काश उनमें से थोडी रकम
पहुँच पाती यहाँ तक ।[2]

---

1. नागार्जुन - तुमने कहा था - पृ. 82 - प्र. 1980
2. वही - पृ. 26 - प्र. 1980.

यद्यपि नागार्जुन का तरीका व्यंग्यात्मकता के माध्यम से स्थितियों का पर्दाफाश है, फिर भी उनकी व्यंग्यात्मकता के दूरव्यापी प्रभाव और उनकी गहरी चिन्ता को भी देखा जाना चाहिए ।

आज़ादी अनेक समस्याओं के मध्य में तिलमिला रही है और गर्म साँसें छोड रही हैं । जनतंत्र के नाम पर तानाशाही को प्रश्रय मिलता है । खोखले आदर्शों का बोलबाला ही आज सारे भारत में मौजूद है । इस अवसर पर अगर साहित्यकार एक क्रांति की प्रतीक्षा करें तो वह स्वाभाविक ही है । नई पीढी की क्रांति ही मौजूदा स्थिति को बदल सकती है । नए कवियों ने पहचान लिया कि आज का जनमानस दमन और शोषण की राजनीति का विरोधी है । युगीन राजनीतिक विसंगतियों के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत उन्हीं में है । इस विचार को पोषित करने के लिए उन्होंने अपनी कविताओं के धार को काफी तीक्ष्ण बनाया । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक ऐसे कवि है जिनमें प्रखर मानवीय चेतना है, राजनीतिक अमानवीयताओं के खिलाफ लडने की ताकत है । एक प्रसिद्ध कवि की हैसियत से सर्वेश्वर ने अपनी लेखनी का जिस तरीके से प्रयोग किया है वह सामान्य नहीं । वह इसलिए कि सर्वेश्वर प्रथमत: एक प्रतिबद्ध कवि हैं । वैचारिक स्तर पर तथा व्यावहारिक स्तर पर वे प्रतिबद्धता के पक्षधर कवि हैं । सभी प्रकार के नकाबों को खोल देना, उससे जुडे सवालों की तरफ पाठकीय चेतना को जगाना उनका उद्देश्य रहा है ।

सर्वेश्वर की कविता में राजनीतिक यथार्थ

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में मौजूदा राजनीति के खिलाफ खुला विद्रोह है । उनकी प्रारंभिक कविताओं में इस तरह की

विद्रोहात्मक प्रवृत्ति कम है लेकिन सन 1970 के बाद की कविताओं में यह प्रवृत्ति प्रखर होती है । जनवादी दृष्टि को हमेशा अपनाने के कारण वे आम जनता के पक्षधर बन गये हैं ।

सर्वेश्वर ने जीवन यथार्थ से उपजी संवेदनाओं को अपनी कविताओं के आधार रूप में स्वीकार किया । इसके पीछे उनका स्वाभिमान था जिसे बनी बनायी राहों पर चलना स्वीकार नहीं था । उन्होंने अपने लिए एक अलग रास्ता बनाया है और लिखा है ।

लीक पर वे चले जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो हमारी यात्रा से बनें
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं ।[1]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पर मार्क्सवाद और कुछ अंशों तक लोहियावाद का प्रभाव दिखाई देता है । लेकिन कवि ने कभी भी इन वादों को हावी होने नहीं दिया है । लेकिन उनकी क्रांति चेतना के तीखेपन में उनका मार्क्सवादी दृष्टि प्रकट होती ही है । उन्होंने सामाजिक गतिविधियों में मौजूद गैर बराबरी के विरुद्ध लडने के लिए अपनी कविता में मार्क्सवादी आदर्शों का सहारा लिया ।

राम मनोहर लोहिया एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने समाज में व्याप्त अराजकता के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलन्द कर दी थी । लोहियावादी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 39 - प्र.सं. 1978

विचारधारा के समाजोन्मुखी नीतियों पर सर्वेश्वर आकृष्ट थे ।

उसने थूका था इस
सड़ी-गली व्यवस्था पर
उलटकर दिखा दिया था
कालीनों के नीचे छिपा टूटा हुआ फर्श
पहचानता था वह उन्हें
जो रँगे चुने कूड़े के कनस्तरों से
सभा के बीच खड़े रहते थे ।[1]

"लोहिया के न रहने पर" नामक कविता में लोहिया की विचारधारा के प्रति सर्वेश्वर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं । लोहिया की नीति ने समाज में फैली गंदगी को दूर करने का सफल कार्य किया । गैरबराबरी, शोषण, गरीबी आदि के खिलाफ लड़ने की ताकत नई पीढ़ी में जगाने में लोहिया सक्षम थे । उनकी वाणी ने, उनके क्रिया-कलापों ने नई पीढ़ी को और नई पीढ़ी के साहित्यकारों को आन्दोलित किया । उनकी श्रद्धांजली के रूप में सर्वेश्वर ने लिखा -

निहत्था अकेला वह गुज़र गया
"चौआलीस करोड़" लोगों के
दिल में से नहीं
एक जलती सलाख सी
दिमाग से ।
अपनी खाली जेबों में
पाओगे पड़ा हुआ तुम उसका नाम
इतिहास करे चाहे न करे अपना काम ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 103 - प्र. 1978
2. वही - पृ. 104 - प्र. 1978

इस कविता में सर्वेश्वर ने ढोंगी सत्ताधारी लोगों को "भेड़ों के वेश में निकलते कमीने तेंदुआ" कहा है ।[1] इतने पर भी उनमें वैचारिकता का कटाटोप नहीं है । इसलिए कृष्णदत्त पालीवाल का यह कथन सच लगता है कि "सर्वेश्वर किसी एक विचारधारा के कवि न होकर विचारधाराओं के गतिशील मूल्यों के कवि है ।"[2]

सर्वेश्वर ने समसामयिक राजनीति की सारी विसंगतियों और अमानवीयताओं को अपनी कविता का विषय बनाया । कवि इस तथ्य से पूर्णत: परिचित है कि राजनीतिक अमानवीयताओं का एकमात्र शिकार आम आदमी है । उसके दयनीय एवं शोषित जीवन को, उन पर होनेवाले राजनीतिक अत्याचारों को सर्वेश्वर ने उनके वस्तु विन्यास में पर्याप्त स्थान दिया है । यही आम आदमी उनकी कविता के केन्द्र में रहता है जिसके जीवन के विभिन्न पहलुओं को सर्वेश्वर विभिन्न रूपों में व्यक्त करते हैं ।

रात भर
एक लाल सायकिल
कँटीले बाड़े से टिकी
अकेली खड़ी रही ।
पुलीस की सीटियाँ बजती रही
उनके भारी बूटों की आवाज़ें आती रहीं ।
सुबह एक बच्चा कहीं से आया
और ओस में भीगी ठंडी घंटी
बजाने लगा ।[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 104 - प्र. 1978
2. डा. कृष्णदत्त पालीवाल - सर्वेश्वर और उनकी कविता - पृ. 39 - प्र. 1992
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 38 - प्र. 1976

सत्ता की विध्वंसात्मक प्रवृत्ति

सर्वेश्वर ने राजनीति की विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों की, अमानवीयताएँ एवं विडंबनाओं की कटु निन्दा की है । राजनीति के नाम पर खुन बहाना विपक्षियों का नामोनिशान मिटाना, आज आम बात बन गयी है । इसलिए "मृत्युदंड" नामक कविता में सर्वेश्वर लिखते हैं -

यदि तुम्हें साँप काटता है
तो तुम साँप को मार सकते हो
यदि आदमी काटता है
तो तुम आदमी मार नहीं सकते
ज़हरीले आदमी पर तुम थूक सकते हो
सब मिलकर थूक सकते हो
यही उसकी मौत है ।

प्रजातंत्र ने जनता को यह विश्वास दिलाया कि यह जनता का है, जनता के लिए है और जनता के द्वारा है । लोगों ने विश्वास भी किया । लेकिन कोई बदलाव नहीं आया । सत्ता चाहनेवाले सिर्फ उसे पाने के चक्कर में थे, आम जनता वहीं का वहीं रह गयी । इस अन्तर्विरोध पर करारा व्यंग्य करना सर्वेश्वर ने अपना ध्येय समझा और उन्होंने लिखा है -

यह बन्द कमरा
सलामी मंच है
जहाँ मैं खडा हूँ

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 57 - प्र. 1982

पचास करोड आदमी खाली पेट बजाते
ठठरियाँ खडखडाते
हर क्षण मेरे सामने से गुज़र जाते है ।[1]

स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हो गयी है तो उसके पीछे स्वतंत्रता की आकाँक्षाओं का मिट जाना रहा है । एक प्रकार से स्वप्न भंग । राजनीति मात्र सत्ताधारी वर्गों की संपत्ति हो गयी । दिनों दिन बिगडती इस स्थिति ने कविता को विषय नहीं प्रदान किया बल्कि कविता के अन्तरंग को तथा कविता की दृष्टि को बदल दिया है ।

देश की शासन व्यवस्था पहले से ही काफी अव्यवस्थित थी । आपात्काल ने उसे और अधिक भीषण बना दिया । इस अवांछित स्थिति से बाहर आने का रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था । "आपात्काल" नामक कविता में सर्वेश्वर ने लिखा कि हम सबको राजनीति की गंदी मानसिकता ने ग्रस लिया है । उससे बचाव शायद संभव नहीं है -

चासनाला की मौतों पर मत रोओ
पूरा देश ही चासनाला हो गया है ।
हम सब एक काली अंधेरी खान में बन्द हो गए हैं
पानी भरता जा रहा है
निकलने का रास्ता नहीं दीखता ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 93 - प्र. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 41 - प्र. 1982.

यह एक तत्कालीन प्रतिक्रिया की कविता नहीं है वस्तुत: तत्कालीन विषय की गंभीरता को राजनीतिक विध्वंस का विषय बनाया गया है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का कवि इस तथ्य से वाकिफ है कि आम आदमी आज सत्ता की अमानवीय व्यवहार के कारण विवश है ।

जो भी आएगा
समाजवाद और समानता के नाम की
ईंट पकायेगा
मनमाने बेडौल साँचे में
ढालेगा कच्ची मिट्टी
पर बुझा पड़ा रहेगा आवाँ
नाम गुलबिया चुल्लुर झावाँ ।[1]

सर्वेश्वर को राजनीतिक विसंगतियों का गहरा एहसास है । भ्रष्ट व्यवस्था, अवसरवादी नेताओं का राजनीतिक पाखण्ड आदि उनकी कविता में लगातार प्रतीकवत् होते हैं । यहाँ तक कि आज गाँधीजी का नाम तक बेचकर खानेवाले नेताओं पर व्यंग्यबाण छेडते हैं । "पंचधातु" में उन्होंने बताया है कि गांधीजी की लंगोटी, लाठी, चश्मा, चप्पल और घडी का उनके तथाकथित अनुयायी उपयोग कर रहे हैं । यहाँ तक बात आ गयी है कि उनके आदर्शों को मनमाने ढंग से तोड मरोडकर वे अपनी स्वार्थ-पूर्ति का साधन बना लेते हैं । यहाँ पर कवि का यह व्यंग्य इस तरह प्रकट हुआ है -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 98 - प्र. 1978

अच्छा हुआ
तुम चले गए
अन्यथा तुम्हारे तन का
ये जननायक क्या करते
पता नहीं ।

इस पंक्ति में निहित विभीषिका की संभावनाओं से पाठकीय मन में खौफ सी बिजली कौंध उठती है कि ये स्वार्थी गाँधी-भक्त शायद उनकी बोटी-बोटी नोचकर भी बेच डालने को नहीं हिचकिचाते ।

इस भ्रष्ट व्यवस्था का जहर सिर्फ शहरों तक ही सीमित नहीं है गाँव भी उससे जल रहे हैं । गाँवों, कस्बों में चल रही लूट को सर्वेश्वर ने "छुपाई मारो दुल्हिन" में प्रस्तुत किया है । लाला माल लेकर खोटी दुअन्नी देते हैं, हाकिम-उमरा सिपाही की छीना झपटी के बाद बचा-खुचा टैक्स में निकल जाता है । उस पर गाँधीजी के चेलों का अत्याचार भी है ।

बोली मारै
बात-बात में
गोली मारै
शोर मचाता घूमै
बच्चे ज्यों लूटें कनकौआ । [2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 110 - प्र. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 406 - प्र. 1959

हमारे समाज की इस भ्रष्ट व्यवस्था एवं ढोंगी राजनीतिज्ञों को प्रश्रय देनेवाला एक वर्ग है चापलूस एवं मौकापरस्तों को वे आम जनता और ढोंगियों के बीच की कडी है । पैसे मिलें तो काम कितना घिनौना भी क्यों न हो वे कर डालते हैं । सत्ता के अमानवीय व्यवहारों को समाज में लागू करा देने में इनका बडा हाथ है । ये अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सत्ता की आज्ञा का पालन करते हैं और आम जनता को लूटते हैं । जैसे सर्वेश्वर ने लिखा -

दूसरों की आज्ञा पर
चन्द पैसों के वास्ते
शिलाएँ, चट्टानें, पर्वत काट काटकर,
रसद, हथियार, एम्बुलेंस, मुर्दागाडियों के लिए
सडक बनाते हैं ।
वे तो पागल हैं
पर इनको मैं क्या कहूँ ?[1]

इन मौकापरस्त लोगों ने सत्ताधारियों को एक महान दर्जा प्रदान किया है । सिर्फ इन लोगों पर यह दर्जा लागू है । वे सत्ताधारियों की असलियत से भी वाकिफ है । परन्तु भोले-भाले आम जनता की स्थिति यह नहीं है । सत्ताधारी मुखौटा पहनकर इन बेसहारों से छल करते हैं । इसको सर्वेश्वर ने यों अभिव्यक्त किया -

उनके असली चेहरे छिपे हुए थे ;
और उन्होंने देवताओं और सन्तों के
नकली चेहरे लगा रखे थे ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 372 - प्र. 1959
2. वही - पृ. 398 - प्र. 1959

इस वहशीपन का शिकार होकर, लाचार होकर आम आदमी जीवनयापन करते हैं । यही सत्ता की विसंगति है । इन विडंबनात्मक स्थितियों से गुज़रने के लिए आज देश अभिशप्त है ।

केवल इतना ही नहीं, ये सत्ताधारी लोक ताक लगाए बैठे है कि कब अपने शिकार पर कब्जा करना है, कब सब कुछ हथियाना है । यही रीति बरसों से चली आ रही है । सिर्फ आम आदमी भारतीय पिटता है । इन आततायी सत्ताधारियों के पंजे से उन्हें मुक्ति मिलें जो आज मृगतृष्णा बनकर रह गयी है । शासक वर्ग अपनी बाहुबल से आतंक ही फैला रहे हैं -

मज़बूत तेज़ सलाखोंवाले पिंजडे में
बैठा है आततायी
शेर झपटेगा अपने ही पंजे घायल करने के लिए ।[1]

इस आततायी शासन व्यवस्था ने पूरे देश को तहस नहस कर दिया है । स्वतंत्र भारत के प्रति भारतीयों के मन में एक सुन्दर कल्पना थी लेकिन वह मिट्टी में मिल गयी और वैभवपूर्ण देश के स्थान पर अमानवीयताओं से भरी देश की काली छाया बाकी रह गयी है । आम आदमी के चूर चूर होते सपने को सर्वेश्वर ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया -

एक नक्शा संभालकर रखा था मैं ने देश का
उस पर फैली हुई है पीली बदबूदार पेशाब ।
इतिहास की यह पोथी
मेरे बाप ने दी जो थी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 99 - प्र. 1978

उसके सफ़े के सफ़े चाट गये हैं
कोई सिलसिला जोड़ना
सिर फोड़ना है ।[1]

कभी-कभी लोग इस सोच में पड़ जाते हैं कि बिना कोई विरोध किए क्या इस वहशी दुनिया में टिक पाएगा । चुप्पी साधने से या पलायन करने से कोई लाभ नहीं । जिस आतंक से डरकर, भाग कर छिपने की कोशिश करते हैं, उससे बचाव संभव नहीं है क्योंकि वह हमेशा खौफ बनकर हमारे ही अन्दर रह जाता है और हमें घुर घुर कर देता है इसलिए सर्वेश्वर ने लिखा -

यदि तुम मुँह छिपा भागोगे
तो भी तुम उसे
अपने भीतर इसी तरह खड़ा पाओगे
यदि बच रहे ।[2]

हमारे छिपकर भागने से या हल्का विरोध करने से इन का बाल भी बाँका नहीं किया जा सकता । क्योंकि वह चालाक है । कुटिल चालों का एक कवच उनके बाहर है इसलिए असुरक्षित जगहों पर भी वे सुरक्षित है और आघात भी उन तक जल्दी नहीं पहुँचते । इसलिए सर्वेश्वर ने लिखा -

कंकड़ों में रेंग रहा है साँप
लाठियाँ मारने पर भी
वह सुरक्षित है ।[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 112 - प्र. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 22 - प्र. 1976
3. वही - पृ. 27 - प्र. 1976

यह सर्वेश्वर का एक अच्छा संकेत है जो आज की भ्रष्ट राजनीति के लिए सर्वथा उचित है । जिस लोक प्रतीक से उसे कवि ने प्रस्तुत किया है उसका प्रभाव काफी गहरा प्रतीत होता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की शासन व्यवस्था पूँजिपतियों के अधीन में आ गया । वे अपने धन की ताकत से शासन पर अपना कब्जा जमाए हुए है । वे सामने खड़े नेता व चापलूसों को टुकडे फेंक देते हैं और तत्काल बनती स्थिति को कवि इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

ताकतवर ने सब खा लिया
कमज़ोर ने उच्छिष्ट से
संतोष कर, दर्द से मुँह छिपा लिया ।[1]

यहाँ ताकतवर लोगों के, शक्ति के बल पर किए जानेवाले भीषण व्यवहारों का शिकार होकर भी जो संतुष्ट दीख रहा है अपने दर्द को जो छिपा रहा है उसका चित्र गहरी चिन्ता का है । यही क्रम पूँजीपतियों ने कायम रखा है और नतीजा यही निकलता है कि ताकतवर दर्प और कमज़ोर झूठे संतोष के हकदार बन जाते हैं ।

भारत की शासन व्यवस्था पूँजीपतियों का टुकडखोर बन गयी और आज वही वर्ग भारत की राजनीति के खुले मंच पर खडा हैं । उनसे प्राप्त हो सकने योग्य मामूली टुकडों के लिए एक पूरा वर्ग प्रतीक्षारत है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 34 - प्र. 1976

अब वे खुले में खडे थे
खडे हैं
खडे रहेंगे
टुकडे फेंके जाने की प्रतीक्षा में
लडने को तैयार
दर्प और संतोष के शिकार ।[1]

ऐसी हालतों ने देश की अस्मिता को पूरी तरह से खतरे में डाल दिया है । देश की कल्पना सिर्फ मोह या कल्पना नहीं है । वह हमारा यथार्थ है । सुगढ़ नागरिक बोध के अभाव में यह यथार्थ टिक नहीं सकता है । लेकिन राजनीति में जब से अधिकार का बल बढा है तब से देश की अस्मिता खतरे से खाली नहीं दिख रहा है । इस अवस्था को निर्मम भाव से सर्वेश्वर व्यक्त करते हैं -

मैं नाव से उतरता हूँ
और बिना उसकी ओर देखें
तेज़ी से इन इमारतों की बगल से गुज़र जाता हूँ
जिन पर "सत्यमेव जयते" को खरोंचकर
लिखा हुआ "सब चलता है ।"[2]

यहाँ सब कुछ चलता है । सत्ताधारी मनमाने ढंग से शासन करता जा रहा है । उसका राज्य चलता है । आम आदमी उसके लिए पसीना बहाता है । कलाकार उसके लिए है । यहाँ तक कि बच्चे तक उनकी तरफदारी करते हैं । इसके बजाय जो भी इसका विरोध करता है उन्हें मिटा दिया जाता है । चाहे वह निरीह बच्चा ही क्यों न हो । जैसे -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 34 - प्र. 1976
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 23 - प्र. 1973

यह बच्चा है इसका कटा हुआ धड़
बस्ता लिए स्कूल के फाटक पर पड़ा है
इसके हाथ में पत्थर है
जिसे वह पुलीस पर फेंक रहा था ।[1]

आज के भारत और स्वतंत्रता के पहले के भारत में यही भिन्नता है कि स्वतंत्रता के पूर्व शासन विदेशी के हाथों था तो आज देशी लोगों के हाथों में है । विदेशी तो दमन की नीति हथियाते थे आज सारी की सारी कुटिलताएँ मौजूद है । यहाँ कवि कहते है कि चालीस साल पहले भुजैनिया को डूब मरने के लिए पोखरा तो था आज हमें डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी भी नहीं है । ऐसी विडम्बनात्मक स्थिति आज इस देश में वर्तमान है । जैसे -

सारा देश एक ठंडे भाड सा दीखता है
सूखी पत्तियाँ उडती डोलती है
बालू सूखे पोखरे में जल रही है
चालीस साल पहले वह डूब कर मरी थी
अब डूब मरने के लिए
कहीं चुल्लू भर पानी भी नहीं है ।[2]

हमारे सामने बचनेका कोई रास्ता भी नहीं है । हमें इस यातना से ऊपर उठाने के लिए एक सहारा प्राप्त नहीं है । सत्ता के प्रतिनिधि गला फाडकर कहते हैं हम सेवक हैं जनता के, लेकिन वे तो निकले निज-सेवक ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 25 - प्र. 1973
2. वही - पृ. 48 - प्र. 1973

बुद्धिजीवि लोग सत्ताधारी लोगों से मिले हुए हैं । कहीं भी एक तिनके का सहारा भी दिखाई नहीं देता । इसलिए सर्वेश्वर ने लिखा -

देखने सुनने और समझने के लिए
अब यहाँ कुछ नहीं रहा -
सत्ताधारी, बुद्धिजीवी
जननायक, कलाकार
सभी की एक जैसी पीठ
काली चमकदार
एक जैसी रचना
एक जैसा संसार ।[1]

सब लोग आम लोगों की आँखों के सामने सिर्फ गौबरैले हैं न कोई अन्तर है न कोई असमानता । लेकिन ये ढोंगी नेता मंच पर खडे होकर चिल्लाते रहते हैं कि हम हैं आपके सेवार्थ, हम ले चलेंगे । जिस प्रकार बस अड्डे पर कुली चिल्लाते हैं वैसे ये नेता लोग भी चिल्लाते हैं । और

देखते ही देखते
सिर पर से बक्स गायब हो जाता है
और मंच से जवाब ।[2]

आम आदमी इन विसंगतियों के दर्शक बने रह जाते हैं ।

सर्वेश्वर की कविता में राजनीतिक विध्वंसात्मकता के विभिन्न चित्र बिखरे पडे हैं जो हमारे सामने कभी भी दिखाई पड सकते हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 50 - प्र. 1973
2. वही - पृ. 53

हम इसके गवाह हैं । सर्वेश्वर भी उसके गवाह हैं । सर्वेश्वर के वे चित्र निरे प्रतीक नहीं है । उनमें व्यक्त विद्रोह, व्यंग्य, विद्रुपता, क्रोध आदि कविता में विन्यसित स्थितियों की गतिविधि हो है । लेकिन ये कविताएँ एक गहरी चिन्ता छोड जाती है । सर्वेश्वर की वास्तविक कविता वहीं से शुरू होती है ।

आम आदमी : राजनीतिक अराजकता का शिकार

आज के ज़माने मे आम आदमी राजनीतिक अमानवीयताओं का शिकार बन चुका है । सर्वेश्वर की बहुत सी कविताएँ इस तथ्य को उजागर करती हैं ।आज की राजनीति पूँजीवादी दलदल में फँस चुकी है । पूँजीवादी व्यवस्था से शोषित ग्रामीणों की त्रासदी को एक व्यापक भावभूमि प्रदान करके परिवर्तन की सार्थक भाव भूमि पैदा करने की कोशिश सर्वेश्वर ने की हैं । इसके बारे में कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं -"आज के आदमी से जुडे प्रश्नों को वे तकिया देकर सुलाते नहीं है । खडा करते हैं, जगाते हैं, तथा सोचने को ढंग से विवश करते हैं । इन चिन्तनगत संवेदनाओं को वे तात्कालिक मोह-मंत्रों से कीलित नहीं करते, सचेतनापरक जमी हुइ राख को फूँककर दहकाते हैं । जीवन की गहराई से सोचने-समझनेवाला कवि कितनी सही समझ हमारे भीतर निष्पन्न कर सकता है सर्वेश्वर की कविता इसका प्रमाण रही है ।"[1]

आम आदमी ही अधिकारी पूँजीवादी दृष्टि से ओतप्रोत राजनीति का शिकार हो जाता है । इसका कथन सही है कि सभी योजनाएँ आम आदमी के नाम पर कार्यान्वित की जाती है और उसे अंधेरे में ही रखा जाता है । यह अंधेरा हमारे सजगता का है जो आज की भ्रष्ट राजनीति का सशक्त हथियार है । इससे आम जीवन में अराजकता व्यापती है । वस्तुत: सर्वेश्वर की कविता ऐसी अराजकता के खिलाफ उठी शब्द संवेदना है ।

---

1. डा. कृष्णदत्त पालीवाल - सर्वेश्वर और उनकी कविता - पृ. 39 - प्र. 1992

वर्तमान व्यवस्था में हर तरफ मौकापरस्ती मौजूद है । इसी मौकापरस्ती ने सर्वेश्वर को विद्रोह का कवि बनाया है । गरीबो हटाओ के आँकडे तथा क्रांति के नाम पर आम जनता कुचली जाती हैं । पीडित और शोषित आम मानव को सहारा देने के लिए धर्म, साम्यवाद या पूँजीवाद सक्षम नहीं है । इसलिए सर्वेश्वर ने लिखा -

साम्यवाद या पूँजीवाद
मैं दोनों पर थूकता हूँ
और पूछता हूँ
जिसके पैर में तुम जूते, नहीं दे सकते
उसके हाथों में तुम्हें
बन्दूक देने का क्या अधिकार है ।[1]

"छीनने आए हैं वे" सर्वेश्वर की एक सशक्त कविता है । इसमें सभी प्रकार की यातनाओं को सहने के उपरान्त भी अपनी यातनाओं की कठिनाइयों को याने पूरे संघर्ष को आम आदमी दर्ज करना चाहता है । लेकिन कवि उस खतरे की ओर संकेत कर रहे हैं कि दर्ज करने के लिए आए हुए हमारी भाषा छीनने के लिए एक सशक्त वर्ग सामने खडा है ।

और अब
जब हम अपनी यातना
दर्ज कराना चाहते हैं
हमसे छीनने आए हैं वे
हमारी भाषा ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 61 - प्र. 1978
2. वही - पृ. 104 - प्र. 1978

बोलती ज़ुबान को बन्द करने का तरीका अपनाना अब राजनीति का हिस्सा बन चुका है । कवि अगर इस अमानवीय व्यवहार को देखकर यूँ ही बैठे रहें तो देश की हालत और बदत्तर हो सकती है । इसलिए कवियों को हिम्मत के साथ खुलकर विरोध करना है । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का कवि-धर्म इन अमानवीयताओं को जड से उखाडने के पक्ष में हैं ।

आज के भारतीय परिवेश में बदलाव की आवश्यकता को कवि अनुभव करता है तो दूसरी ओर वह संसार की रीतियों से अनभिज्ञ नहीं है । क्योंकि व्यवस्था का मानवता के खिलाफ षड्यंत्र विश्वव्यापी है । इसलिए मनुष्य पर हो रहे अत्याचार को "कम्बोदिया" नामक कविता में उन्होंने यों अंकित किया -

जब जंगल जल रहे हैं । आदमियों को
और बस्तियाँ औरतों बच्चों समेत
खाक में मिल रही हो
तब जान लो अब कुछ समझने को नहीं रहा ।[1]

शांति के नाम पर युद्ध का व्यवसाय करनेवालों या भोली जनता का विश्वास प्राप्त कर उन्हें दगा देनेवालों पर सर्वेश्वर व्यंग्यबाण छेडते हैं । एटम बमों से अपने तहखानों को भरने के बावजूद "पीस पगोडा" बनाने का पाखण्ड करनेवालों पर फब्ती कसते हुए उन्होंने कहा है -

और इस बार यदि फिर
"पीस पैगोडा" बनाना पडे

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी- पृ.77 - प्र.1973

तो बौद्ध भिक्षुओं के गैरिक वसनों को न भूलना
क्योंकि उन टीले योगों के नीचे
बड़ी बड़ी आटोमेटिक राइफलें तक
आसानी से छिपाई जा सकती है ।[1]

प्रत्येक दुविधाग्रस्त स्थिति में भी आम आदमी आगे ही बढता है । तमाम प्रकार की कठिनाईयों के उपरांत उसे आगे ही बढना है । संभवत: यह उसकी ताकत भी है । लेकिन उसे कदम कदम पर सावधानी बरतना पडता है । इस ओर संकेत देते हुए कवि का कथन है -

अपने कदमों की आहट से भी डर लगता है
राह आगे की धडक जाती है इस छाती में
फिर भी मैं चलता हूँ - मज़बूरियों गति में साधे
अपनी मंजिल का धुआँ अपनी नज़र में बाँधे ।[2]

आम आदमी अपने पेट को पालने के लिए खुन-पसीना बहाकर काम करता है, और उससे मिलते चन्द सिक्कों से अपने को खुश कर देता है । लेकिन शोषक वर्ग उस कमाई से अपना "कोश" भर रहे हैं । एक के लिए जीविकोपार्जन है तो दूसरे के लिए स्वार्थ पूर्ति । लेकिन प्रयत्न करनेवालों में "दूसरे" नहीं है । यही तो फर्क है । दोनों को पेट है, दोनों को भूख भी है लेकिन -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 370 - प्र. 1959
2. वही - पृ. 264

पेट पेट का इसे कहें
या भूख भूख का अन्तर है,
एक ओर भूखी गौरैय्या
एक ओर नीला अजगर है ।[1]

इसी तरीके से रात-दिन काटने पर भी, सुख और चैन का नाम भी उसके हिसाब में नहीं है । अपनी ज़िन्दगी को आगे धकेलने के चक्कर में आम आदमी को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पडता है । लेकिन हर तरह की तकलीफें उठाने के बाद भी वह जहाँ है वहीं वह रहता है । कोई परिवर्तन नहीं प्रगति का नाम तक नहीं । इसलिए कवि ने कहा

हर तरफ दरवाज़ें
या तो बन्द मिलते हैं
या मृत पुतलियों की तरह खुले
हर यात्रा शुरू होने से पहले ही
समाप्त हो जाती है ।[2]

हमारे सामान्य जीवन संदर्भ में, राजनीतिक प्रकरण में या कोई भी जीवन परिदृश्य कई प्रकार के प्रतीक हम अपना चुके हैं । इस प्रतीक के साथ हमारा इतना गहरा रिश्ता हो जाता है कि उसे हम अपने से अलग नहीं कर पाते हैं । हमारी देशीय अस्मिता के साथ जोडने योग्य कोई भी प्रतीक - जैसे झंडा, गीत या हमारी परंपरा आदि - आज के आम भारतीय के लिए महत्त्वपूर्ण है । उसके प्रति उसका पूरा समर्पण का भाव है । लेकिन वास्तविकता यह है कि ये सब निरे प्रतीक है जिनके मूल्य को आज की राजनीति ने पूरी तरह से खाली कर दिया हैं । इसलिए सर्वेश्वर लिखते हैं -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 366 - प्र. 1959
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 44 - प्र. 1978

इनसान के नाम पर
एक बहुत बड़ा झंडा यहाँ लहराता है
मरे हुए इतिहास का एक पन्ना
दौड़ता फड़फड़ाता गाता है,
हर बार उससे टकराकर
मैं रास्ते से अलग गिरता हूँ
वितृष्णा और बदबू का एक झोंका
फिर मुझे उठाता है ।[1]

कवि यहाँ औसत भारतीय आदमी की वजूद के सामने प्रश्नचिह्न लगाते हैं कि आखिर उसके भविष्य में क्या लिखा है ।

आज भारत का नक्शा ऐसा बन गया है कि आम जनता इन विडंबनात्मक स्थितियों में भी साधारण सी ज़िन्दगी बिताती है । राजनीतिक पाशविकता "बंजर पड़े भूमि में नाखुन लेकर खड़ा" है[2] फिर भी औरतें रात-दिन आपस में झगड़ती हैं, गालियाँ देती हैं, बच्चे नाक बहाकर, नंगे होकर खुले दरवाज़ों की ताक में घूमते हैं । गरीबी और जीवन की जटिलताओं ने मनुष्य को ऐसा बना दिया । लेकिन

और इन सबके बीच
कुआनो नदी निर्लिप्त भाव से बहती रहती है
अपना पाट नहीं बदलती ।[3]

आम आदमी भी इसी प्रकार निर्लिप्त भाव से सब कुछ

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 47 - प्र. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 19 - प्र. 1973
3. वही

देखता हैं और ज़िन्दगी को आगे धकेलता है । इस तरह चुप्पी साधनेवाले गरीब लोगों को सत्ता अपनी इच्छा पूर्ति का साधन बनाती हैं । जो दलित है, जो अनपढ है उनका तो समाज में कोई स्थान ही नहीं । ज़मीन्दार हो या शासक वर्ग अपने अपने ढंग से उन्हें लूटते हैं । कभी-कभी इसकी सीमा क्रूरता की उच्चतम स्तर को भी लाँघती है जैसे -

यह हरिजन था इसे ज़िन्दा जला दिया गया
यह अनपढ गरीब था
इसे देवी की बलि चढा दिया गया ।
यह आस्थावान धर्म गुरुओं की कोठरी में मरा,[1]

सर्वेश्वर का कवि मन हमेशा इसी आम आदमी के पक्ष में हैं । उसकी मज़बूरियों से वे पूरी तरह से परिचित है । पर इनके अन्य विशिष्ट स्वभावों से भी वे परिचित है इसलिए यह भी सर्वेश्वर को मालूम है कि यह आदमी संघर्ष से पीछे हटनेवाला भी नहीं है । अपने को हर तरफ से घिरे हुए समझने के बावजूद वह संघर्ष से आँखें मूँदकर चलता नहीं है । वह हर जंग के सामने रहता हैं ।

जब सब बोलते थे
वह चुप रहता था
जब सब चलते थे
वह पीछे हो जाता था,
जब सब खाने पर टूटते थे
वह अलग बैठता टूँगता रहता था,
जब सब निढाल हो सोते थे

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी- पृ. 26 - प्र. 1973

वह शून्य में टकटकी लगाये रहता था,
लेकिन जब गोली चली
तब सब से पहले
वही मारा गया ।[1]

उसी को मरना पडता है क्योंकि वह मरने के लिए अभिशप्त है । राजनीति ने उसे मरने के लिए छोड दिया है । प्रशासन के रीति रिवाज़ों में ऐसे कई लोग बिना किसी कारण मर जाते हैं और वे शहीदों की संख्या में गिने जाते हैं । सर्वेश्वर इस दु:स्थिति से परिचित होने के कारण यह भी बताते हैं कि इन्हें देश की अस्मिता के प्रतीकों की आवश्यकता नहीं -

मैं जानता हूँ तुम्हारे हाथों में
अभी कोई झंडा नहीं है
भूखे और असहाय आदमी को
किसी झंडे की ज़रूरत नहीं होती ।[2]

सत्ता की अमानवीयता एवं विडम्बना को सदियों से सहते आने पर भी आम आदमी के पास जीवनयापन का कोई साधन नहीं । न घर, न कपडा, न अन्न । इन तीनों से वंचित आदमी के सामने आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता है ? हंज़ूरी ने भी वही किया था । बच्चों समेत कुए में कूद पडी सिर्फ हज़ूरी बच निकली ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 36 - प्र. 1982
2. वही - पृ. 39

काम न मिलने पर
अपने तीन भूखे बच्चों को लेकर
कूद पड़ी हंजूरी कुएँ में
कुएँ का पानी ठंडा था ।
बच्चों की लाश के साथ
निकाल ली गयी हंजूरी कुएँ से
बाहर की हवा ठंडी थी ।[1]

तब भी, अदालत में और जेल में उसे ठण्ड ही महसूस हुई । बाहर हो या कानून के सामने हो या अदालत में हो उसे सब एक जैसे लगते हैं । लेकिन आज उसे लगा कि सब कुछ ठंडा नहीं था बल्कि

सड़ा हुआ था
सड़ा हुआ है
सड़ा हुआ रहेगा ।[2]

आज आदमी को केन्द्र में रखकर कविताएँ लिखने के बाद सर्वेश्वर उसके इतिहास की इति में यही अनुभव करते हैं कि सब कुछ सड़ा हुआ ही है । यह अनुभव मामूली नहीं है । यह उस मामूली आदमी का अनुभव है जो उसे आज के भ्रष्ट राजनीति के विस्तृत प्रसंग से मिला । यह सर्वेश्वर का कवितानुभव भी है जो उनकी कविता को सहज बना देता है ।

क्रांति की चेतना

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी के इने-गिने क्रांति

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 46 - प्र. 1982
2. वही

चेतना व्यंजित करनेवाले कवियों में सर्वेश्वर का नाम अवश्य आ जाएगा । इसका कारण यह है कि वे सामाजिक यथार्थ की गहराई की पहचान रखनेवाले कवि है । उसके प्रति मौन साधनेवाले कवि भी नहीं हैं । इसलिए उन्हें प्रतिक्रियान्वित होना पडता है । तब उनकी क्रांति भावना फूट पडती है -

कुआनो नदी उतनी ही उथली है
नाव उतनी ही छोटी कीचड में फँसी हुई
मुर्दे उतने ही बेशुमार
कहाँ हो ओ क्रांति के सूत्रधार ।[1]

यह कवि का आह्वान है, कवि-मन की उत्सुकता की पहचान भी है ।

सशक्त क्रांति के द्वारा समाज में व्याप्त राजनीतिक पाखण्ड, गैरबराबरी आदि को मिटाया जा सकता है । सर्वेश्वर का यही मत है। क्रांति के सहारे एक नया समाज - यही कवि की उम्मीद है । इसलिए कवि ऐसा गीत प्रस्तुत करता है जिसमें क्रांति भावना जगाने की क्षमता हो, नए समाज के निर्माण की शक्ति हो जैसे -

गीत -
जिसमें विद्रोह हो, ध्वंस हो
निर्माण की आकाँक्षा हो, सतत प्रयत्न हो
स्वर्ग की सृष्टि हो, सृष्टि का निर्वाह हो ।[2]

क्रांति कवि की राय में समूल परिवर्तन के लिए आवश्यक है । लेकिन आम भारतीय एक ऐसी स्थिति में है जिसे क्रांति की शक्ति का एहसास नहीं । उसे उस "आग" की तीक्ष्णता का एहसास कराना है और

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 29 - प्र. 1973
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 325 - प्र. 1959

समझाना है कि आखिर यह "आग" क्या है ? जब, किसान, मज़दूर जैसे शोषित उस आग को जान जाएँगे तब परिवर्तन खुद ब खुद आ जाएगा । इसके लिए उनमें आत्मविश्वास भरना ज़रूरी है । अनपढ, गरीब लोगों तक शिक्षा का प्रकाश फैलाना है और पढाना है कि "आग" कैसे लिखी और पढी जाती है । आखिर "आग" की शक्ति क्या है: तब देखो क्या होता है -

मैं ने देखा स्लेट पर चलती उनकी उँगलियाँ
लौ में बदल रही हैं
और पूरी शब्द लिखते ही
उनका हाथ मशाल में बदल गया है ।[1]

आगे सर्वेश्वर कहते हैं कि वह इस प्रकार की एक आग की प्रतीक्षा कर रहा था, जिसमें समूल परिवर्तन की ताकत हो । उस आग को समाज के कोने-कोने में देखने की इच्छा कवि में है । उसे किसानों के चिलमों में, मज़दूरों की बीडियों में, उनके चूल्हों में धधकते देखना कवि पसन्द करते हैं । यानी जहाँ भी अनीति और अत्याचार है वहाँ यह चिनगारी को ज़रूर जन्म लेना चाहिए । उसके लिए कवि अपने को अर्पित करने के लिए भी तैयार है । ताकि क्रांति की आग भडक उठे । क्योंकि कवि हमेशा "उनका और उनके लिए होना चाहते है ।"[2] उस आग की लपट में सारी अमानवीयताएँ ज़रूर राख होगी यही कवि का विश्वास है ।

यहाँ कवि सर्वेश्वर की क्रांतिकारी चेतना सुलगती नज़र आती है । क्योंकि समाज की अव्यवस्थाओं से प्रताडित कवि-मन एक क्रांति

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 13 - प्र. 1976
2. वही - पृ. 16

का, आग्रह रखता है जिसे दीन-दलितों के बीच से पनपना है । लेकिन अकेला एक व्यक्ति मशाल जला नहीं सकता । उसके लिए अनेक हाथों का होना ज़रूरी है । तभी वहशी भेड़िया छिपकर भागना शुरू करेगा । कवि ने इसीलिए कहा -

करोड़ों हाथों में मशाल लेकर
एक एक झाड़ी की ओर बढ़ो
सब भेड़िए भागेंगे ।[1]

यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आम आदमी को शिकंजे में फँसाने की इच्छा रखनेवाले भेड़िए को एकता के साथ उठे मशाल ही भगा सकेंगे । यहाँ कवि एकता की शक्ति पर भी ज़्यादा ज़ोर देते हैं ।

कवि हमेशा सशक्त क्रांति के पक्षधर हैं । लेकिन कभी-कभी क्रांति की यह चिनगारी सत्तारोपित व्यवहार और अन्य विडंबनात्मक स्थितियों की कँटीली झाड़ियों में अकेली पड़ जाती है । कोई उसे सुलगाने का प्रयत्न नहीं करता । क्योंकि ताकत का अभाव और सत्ता की प्रताड़ना का डर इसके पीछे काम करता है । लेकिन नई निरीह पीढ़ी इस क्रांति को कवि के शब्दों में "लाल साइकल" को ढूँढ लेते हैं और घंटी बजाना शुरू करते हैं । यहाँ बच्चा का यों आना और निरीह भाव से साईकिल की घंटी बजाना काफी मर्मस्पर्शी है । लेकिन बात यहाँ रुकती नहीं बल्कि बिगड़ जाती है । क्रांति की यह शंखध्वनि सत्ताधारियों की नींव हिला देगी इसी कारण से वे अपनी शासकीय शक्ति के बल पर उस चिनगारी पर पानी डालने का प्रयास करतो है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 23 - प्र. 1973

घरघराती हुई एक काली भारी गाडी
सायरन बजाकर आकर रुकी ।
बच्चा घंटी बजाना भूल
गाडी की छत पर टिमटिमाती
नीली रोशनी को देखने लगा
फिर गाडी उसे लेकर चली गई ।[1]

क्रांति को कभी दबायी नहीं जा सकती । क्योंकि क्रांति की चिनगारी लाख कोशिश करने पर भी मिटती नहीं है । एक क्रांतिकारी का दमन हज़ारों के उदय का कारण बन जाता है । सर्वेश्वर ने अपने इस विचार को कविता में ढाला है ।

अक्सर ऐसा होता आया है
कि आज़ादी का नाम लेनेवाले की ज़बान
आततायी काट लेते रहे हैं
और लाखों ऐसी ज़बानों की माला पहनकर
खडे हो गये हैं
लेकिन आवाज़ गयी नहीं है ।
एक कटी हुई ज़बान
करोडों सिली हुई ज़बानों को खोल देती है ।[2]

यह निरीह बच्चा क्रांति का सूत्रधार है, वह निर्भय है । वह निर्भीक होकर क्रांति की घंटी बजाता है और विपदाओं का सामना अकेले करता है । यही क्रांति की असली दिशा है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 38 - प्र. 1973
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 61 - प्र. 1973

परिवर्तन की प्रतीक्षा में बैठे लोगों से सर्वेश्वर कहते हैं कि राजनीति और सत्ता की अमानवीय व्यवहार सीमाएँ पार कर चुकी है । अब उसको ढोने की कोई ज़रूरत नहीं । अब भी झेलोगे तो बचना मुश्किल होगा । जैसे -

पानी चढ रहा है
ख़ून खौल रहा है
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान ।[1]

इसलिए अब इस खतरे के निशान को समझना है और क्रांति के उस छोर को अपनाना है । कुर्सी पर बैठे राजनीतिक नेता दीवारें खडी कर रहे हैं, अनेक मोर्चाएँ तैयार रखते हैं क्योंकि वे क्रांति की आग से डरते हैं । इसलिए सर्वेश्वर लिखते हैं -

कडकती बिजली है
दिलों में, बस ।
हर अंधेरा ख़ुद
रोशनी को जन्म देता है
अंधेरे में निकल पडो
तो अंधेरा अंधेरा नहीं रह जाता ।[2]

यहाँ कवि चेतावनी देने के साथ साथ आह्वान भी करते हैं कि क्रांति की भट्टी में कूद पडो । कूदने के बाद उसकी तपिश का एहसास तुम्हें कभी नहीं होगा ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 30 - प्र. 1973
2. वही - पृ. 32-33

सिर्फ इतना करने से काम नहीं चलेगा बल्कि राजनीति के क्षेत्र में फैली अमानवीयता के ज़हरीले दाँत को तोड़ना है । कवि कहते हैं -

लो इसे तोड़ो
यही है वह ज़हरीली थैली
जिससे इनसानियत को निपटना है
जिसके बूते पर
हर तानाशाह इतराता है
लो इसे तोड़ो ।[1]

सर्वेश्वर की क्रांतिचेतना से युक्त प्रत्येक कविता में मात्र क्रांति का आह्वान नहीं है । एक ओर उसको वर्ग की सही पहचान है दूसरी ओर राजनीति के अन्दर ही अन्दर तानाशाही शक्तियों को पहचानने की क्षमता है । उसकी सभी साजिशों को पहचानने के उपरांत ही सर्वेश्वर तोड़-फोड़ की बात करते हैं । इसलिए उनकी ये रचनाएँ क्रांति की सतही सच्चाइयों को ही नहीं क्रांति की गहरी चिन्ताओं की है । इसीलिए सर्वेश्वर लिख सके -

मैं महात्मा गांधी के चित्र में
लाठी को, बन्दूक की तरह बना देता हूँ
और "रघुपति राघव राजा राम" को
"घोंपत घोंपत आजा राम" गाने लगता हूँ ।[2]

यह आस्था का क्रांति में परिवर्तन है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 53 - प्र. 1982
2. वही - पृ. 65

सत्ताधारी शासक वर्ग को विश्वास है कि आम दलित लोग उनके पैरों तले पडे रहेंगे और उनसे कोई खतरा नहीं है । जिस प्रकार हाथ और दस्ताने का अटूट रिश्ता है उसी प्रकार सत्ता का जनता से अटूट रिश्ता है । लेकिन जब अत्याचार अपनी सीमा को लाँघता है तब बेजान सी पडी इन गरीबों में जान आएगी और वे सबसे खतरनाक बन जाएगी । तब उन्हें मामूली समझना बेवकूफी है उनके रगों में तब खुन खौलता होगा दौडता नहीं । इसलिए सर्वेश्वर ने लिखा -

जिसे तुम
मरी ऊन के रेशे समझ रहे हो
वे अब धडकती रगें हैं
उनमें खुन दौड ही नहीं रहा है
खौल रहा है ।
तानाशाहों को सबसे बडा खतरा
दस्तानों से ही होता है ।[1]

सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में युग-यथार्थ और राजनीतिक विसंगतियों से सीधी टकराहट व्यक्त की है । देश की व्यवस्था, प्रशासन की विफलता आदि ने एक प्रकार का मोहभंग जनता में पैदा की थी । क्रांति की आग को ठंड होते देखकर आदमी को अपनी हैसियत को भूलते देखकर कवि के मन में यह भाव उठा कि आज क्रांतियात्रा नहीं सिर्फ शवयात्रा ही है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 31 - प्र. 1982

ढोल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे धीरे एक क्रांतियात्रा
शव-यात्रा में बदल रही है
सडाँध फैल रही है ।
नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के
सीमान्त धुँधले पडते जा रहे हैं
और हम चूहों से देख रहे हैं ।[1]

समय के बहाव के साथ साथ "वादों" पर से जनता का विश्वास उड गया । साम्यवाद हो या और कुछ भूख मिटाने में पीडितों का साथ नहीं दिया । जो हडपना सीख चुके थे वे शान से जिए, दूसरे कीडों के मौत मरे । "पोस्टमार्टम की रिपोर्ट" नामक कविता में राजनीतिक दुरवस्थाओं से मुक्ति चाहनेवाले कवि के रूप में सर्वेश्वर नज़र आते हैं । क्योंकि मनुष्य और यथार्थ उनके लिए प्रमुख हो गया था ।

गोली खाकर
एक के मुँह से निकला - /"राम" ।
दूसरे के मुँह से निकला -/" माओ" ।
लेकिन तीसरे के मुँह से निकला -/ "आलू" ।
पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है
कि पहले दो के पेट
भरे हुए थे ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 90 - प्र. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 37 - प्र. 1982

वर्तमान व्यवस्था के प्रति सर्वेश्वर का गहरा असंतोष यहाँ व्यक्त होता है । आधुनिक भावबोध की विडम्बनाओं में वे अपने विचारों को राजनीतिक चेतना से जोड देते है ।

राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र में कवि को अक्सर विडम्बनाओं के दृश्य ही देखने मिला । उससे उपजी विद्रोह की आग को अपने शब्दों में भरते हुए कवि ने लिखा -

शब्द यदि बुलेट होते
तो वे तानाशाहों की छाती पर बैठे होते ।[1]

और सर्वेश्वर की कविता की सामाजिक चेतना उनकी प्रगतिशील दृष्टि और उनका जनता से गहरा संबंध स्थापित करती है । इसलिए विडम्बनाओं एवं अमानवीयताओं को देखकर सर्वेश्वर आक्रोश से भर जाते हैं और क्रांति को मुक्ति के उपाय के रूप में स्वीकार भी करते हैं ।

चिनगारी की प्रतीक्षा : आस्था का स्वर

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपने देश की उत्पीडित जनता की संग्रामी चेतना को जगाने के पक्षधर है । कवि ने मार्क्सवाद और लोहियावाद के प्रभावी अंशों को स्वीकार किया लेकिन इन वादों को अपने ऊपर हावी होने नहीं दिया । इसके विपरीत उन सबसे प्राप्त ऊर्जा को, चिनगारी को कायम रखना ही नई पीढी का धर्म है । इसलिए सर्वेश्वर लिखते हैं -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 64 - प्र. 1973

ओ मेरे देशवासियों
छूट न जाये कहीं क्रांति की डोर
एक चिनगारी ओर ।[1]

सत्ता की अमानवीय व्यवहारों से आहत होकर जनता अपनी शक्ति खो चुकी है । अपना वजूद अब उनके दिमाग में नहीं है । शोषकों के मन में उठनेवाले लोभ का शिकार बनकर आम भारतीय जनता अपना वर्चस्व खो चुकी हैं । लेकिन कवि कहते है कि अब जागने के समय आ गया, घबराने की कोई बात नहीं ।

अच्छा अब बहुत हो चुका है
तुम उठ आओ,
दुनिया ऐसे ही चलती है -
मत घबराओ ।[2]

नई पीढी को जागृत होने का आह्वान भी देते हैं ।

एक चिनगारी और -
जो खाक कर दे
दुर्नीति को, ढोंगी व्यवस्था को
कायर गति को
मूढ मति को,
जो मिटा से दैन्य, शोक, व्याधि ।[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 102 - प्र. 1978
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 285 - प्र. 1959
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 103-104 - प्र. 1978

सर्वेश्वर की आस्थावादी दृष्टि हमेशा चिनगारी की प्रतीक्षा करती है । उसके लिए जोखिम उठाने को भी वे कहते हैं । खुद को पहचानकर निर्भय होकर मशाल उठाना है उसके लिए भेडिए का आना ज़रूरी है । जैसे -

भेडिए का आना ज़रूरी है
तुम्हें खुद को पहचानने के लिए
निर्भय होने का सुख जानने के लिए
मशाल उठाना सीखने के लिए ।[1]

साधारण से साधारण लोग इस सचाई से पूर्णत: अवगत है कि वे इन शोषक वर्ग के पैरों तले रौंदी हुई धूल हैं । लेकिन कवि उन्हें आह्वान करते हैं कि धूल बनकर पडे रहने से तुम तकदीर को बदल नहीं सकते बल्कि आँधी बनकर तुम अपना तकदीर खुद रचो ।

तुम धूल हो
पैरों से रौंदी हुई धूल
बेचैन हवा के साथ उठो
आँधी बन
उनकी आँखों में पडो
जिनके पैरों के नीचे हो ।[2]

किसी भी तरह की अमानवीय व्यवस्था के पैरों तले, सब कुछ सहकर पडे रहने के बजाय, आँधी बनकर उन तमाम अदूरदर्शिताओं को तहस नहस करना है । तब अत्याचार का, विसंगति का हर कोना तुम्हें दिखाई देगा और तुम परिवर्तन का नया प्रवक्ता बन सकते हो ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 24 - प्र. 1973
2. वही - पृ. 29

सिर्फ इतना ही नहीं पूँजीपति लोग और सत्ता पर आसीन शासक वर्ग आज़ाद और निर्भीक आदमी से डरते हैं । क्योंकि आज़ादी की भावना दुनिया का सबसे संहारक अस्त्र है ।[1] आज़ाद आदमी तख्ते को पलट सकता है, कुर्सी से शासकों नीचे गिरा सकता है इसलिए कवि कहते हैं -

देखो देखो -
वे आज़ाद आदमी से डरते हैं
सारी दुनिया आज़ाद आदमी से डरती है
क्योंकि उसकी हथेलियाँ
इस दुनिया को रचती है ।[2]

कवि एक चिनगारी की प्रतीक्षा ज़रूर करती है लेकिन उसे रक्त रूक्षित क्रांति में तब्दील कर आदमी को आदमी से जानवर बनाने के पक्षधर नहीं है । क्योंकि आदमी और जानवर के बीच सिर्फ एक नाज़ुक फर्क ही रह गया है । इसलिए हमें कलम में स्याही भरना है बन्दूक में गोली नहीं क्योंकि

मतलब यह -
कि बंदूक में गोली भरते ही
हम वहाँ खाली हो जाते हैं
जहाँ कलम में स्याही भरते ही
हम भरने लग गए थे ।[3]

सारी विसंगतियों को झेलने के बाद, इन सारी विडम्बनात्मक स्थितियों से गुज़रने के बाद भी भारतीयों के मन में एक

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 66 - प्र. 1973
2. वही - पृ. 66
3. वही - पृ. 82

आशा बाकी रह गयी है । लंबे समय के लिए ही इन पाशविकताओं को झेलकर अब वह आदमी भले ही उसका आदी हो गया हो फिर भी वह परिवर्तन की प्रतीक्षा करता है ।

एक अरसे से खूँटी पर टँगे टँगे
मैं भी
एक काली आँधी
एक बड़े भूकम्प की ज़रूरत
महसूस करने लगा हूँ ।[1]

सर्वेश्वर की दृष्टि क्रांति से ओतप्रोत है । साथ ही वह आस्था से जुड़ी है । उनकी क्रांति अनास्था की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि वह आस्था की रचनात्मक दिशा है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 23 - प्र. 1982

अध्याय : पाँच

सर्वेश्वर का कविता - शिल्प

आधुनिक कविता में शिल्प

आधुनिक युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नए अन्वेषण हुए हैं । साहित्य का क्षेत्र भी इसमें आता है । साहित्य में मनुष्य की सौंदर्य-चेतना की अन्वेषण दृष्टि ही प्रमुख है । मनुष्य की इस चेतना को रूपायित करने में ज्ञान-विज्ञान और विश्वव्यापी महत्वपूर्ण घटनाओं का हाथ है । मनुष्य की बदलती निरंतर नवीकृत सौंदर्यचेतना ने साहित्य में भी विविधता को जन्म दिया । विषयवस्तु से लेकर शिल्प व भाषा के स्तर तक यह विविधता व्याप्त है ।

जीवन और भावबोध का जटिल होना और परिणामस्वरूप रचना की अभिव्यक्ति का जटिल होना स्वाभाविक बात है । वस्तुतः यहाँ समय और परिस्थितियाँ पर्यवसित होती हैं । परिवर्तन को पूरी गंभीरता के साथ आत्मसात् करना रचनाकारों की सबसे बडी चुनौती है । चुनौती यह भी है कि उसे किस रूप में किस प्रकार ढाला जा सके । शिल्प की समस्या यही से उत्पन्न होती है । अतः शिल्प रचना के बाह्य पक्ष नहीं है । वह रचना का आन्तरिक पक्ष ही हैं ।

नये कवियों का तर्क यह है कि युगीन परिस्थितियों और जटिल भावबोध को संप्रेष्य बनाने के लिए कविता को नवीन शिल्पविधान अपनाना चाहिए । अतः वे शिल्प के पुराने प्रतिमानों को छोडने पर विवश हैं । पुराने और नए शिल्पविधान संबंधी भिन्नता की पृष्ठभूमि में समकालीन कवियों की कविदृष्टि ही प्रमुख है ।

कविता की रचना में जिन-जिन उपादानों की आवश्यकता है जिसमें कविता का ढाँचा तैयार है वे सब कविता शिल्प के अंतर्गत आते हैं । उनमें शब्दयोजना, भाषा, छन्द, लय, तुक, बिम्ब, प्रतीक, मिथक से लेकर लघु कविता, लंबी कविता, नवगीत, काव्य नाटक आदि काव्य रूप तक आते हैं । तारसप्तक के कवियों की रूपविधान संबंधी महत्वपूर्ण देन का जिक्र करते हुए गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा - "नये विषयों के साथ साथ उपमान, चित्र, रंग, छन्द, लय, अन्तर्संगीत, भाषा और शब्दयोजना के नवीन प्रयोग स्थिर हुए । इन सबने मिलकर रूपविधान की दिशा में एक व्यापक क्रांति उत्पन्न कर दी है ।"[1]

मनुष्य शरीर की तरह कविता भी एक संश्लिष्ट रचनात्मकता का परिणाम है । जिस तरह हाथ, पैर, कान आदि अवयव पृथक् पृथक् रूप में शरीर नहीं है, उसी प्रकार कविता का सौंदर्य भी वस्तु, रस, शिल्प आदि में पृथक पृथक स्थित नहीं हैं । कविता तो इनका समवेत रूप है । दूसरी ओर रचनाकार की मूल समस्या अपनी काव्य संवेदना को, उसकी तमाम विशिष्टताओं के साथ संप्रेषित करना होती है । इसलिए किसी एक अंग का फीका पडना, कविता की सघनता को नष्ट कर देता है । इसलिए रचनाकार को काफी सजग रहना पडता है । अत: संप्रेषण के लिए वह नए-नए ढंग को और नए-नए रूप को अपनाते रहते है । सभी अंगों को समान महत्व देकर, नयेपन के साथ प्रस्तुत रचना कालजयी बन जाती है ।

काव्य में शिल्प का सर्वाधिक महत्व है । इधर हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के तीसरे दशक से सौंदर्य संबंधी नए-नए विचार

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - आलोचना, अंक-4 - पृ. 62 - जुलाई 1954

आने लगे । सौंदर्य संबंधी नए दृष्टिकोण में शिल्प का पर्याप्त महत्त्व उद्घोषित किया गया है । असल में, नवीन शिल्प के रूप में कविता शिल्प के प्रति सजगता, आधुनिक काल के प्रारंभ से ही शुरू हो जाती है । आधुनिक काल के कविता-विकास के हर पडाव में नई शिल्प विधियों का उन्नयन देखा जा सकता है । सच बात तो यह है कि नए कवियों में मौजूद शिल्पसंबंधी नएपन के बीज उनके पूर्ववर्ती रचनाकारों में मौजूद थे ।

नयी कविता के कवियों में शिल्प के प्रति गहरी सचेतना है । प्रारंभिक दौर में "तारसप्तक" के कवि तो रूपविधान की दृष्टि से नए विषयों और शैलियों की रचना में सक्रिय थे । तारसप्तक के कवियों का सारा ध्यान शिल्पगत प्रयोगों की ओर था ।

शिल्प के प्रति सजगता को लेकर नए कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है । प्रथम श्रेणी में वे कवि आते हैं, जो शिल्प को अत्यधिक महत्त्व देते हैं । ऐसे कवियों में अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध और गिरिजा-कुमार माथुर आदि हैं ।दूसरी श्रेणी में वे कवि आते हैं, जो शिल्प को महत्त्व तो बहुत अधिक देते हैं लेकिन कथ्य के वज़न पर नहीं । इस श्रेणी में त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, रघुवीर सहाय आदि के नाम आते हैं । तीसरी श्रेणी में वे कवि आते हैं जो शिल्प और शैलीगत प्रयोगों की पक्षधरता के बावजूद सिद्धांतत: शिल्प के प्रति विशेष सजगता या श्रमसाधना के पक्षधर नहीं हैं । वे "प्रयोग" के लिए शिल्प को अपनाने के लिए तैयार नहीं, बल्कि सहज रूप से शिल्प का नया प्रयोग उनकी कविताओं में आ जाते हैं । भवानीप्रसाद मिश्र, कीर्ति चौधरी, शकुन्त माथुर और एक हद तक सर्वेश्वरदयाल सक्सेना इस कोटि में

आते हैं । लेकिन सामान्य बात यही है कि सभी कवि शिल्प को महत्व देते है और एक कवि केलिए उसके प्रति सजग रहना ज़रूरी समझते हैं ।

नए कवि शिल्प के महत्व की स्पष्ट घोषणा करते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि शिल्प सजगता के अभाव में रचना की पूर्णता संभव नहीं है। शिल्प की तमाम खुबियों का भरपूर उपयोग वे करते हैं, लेकिन कविता में शिल्प का उजागर होना कविता की कमज़ोरी मानते हैं । इसलिए शिल्प को सहज उपलब्धि रूप में वे स्वीकार करते हैं । अत: यह नतीजा निकलता है कि नये कवि सिद्धांतत: रचनाकार के लिए शिल्प या अभिव्यक्ति के प्रति सजग रहने को महत्वपूर्ण मानते हैं ।

नए कवियों का आधुनिक भावबोध बदली हुई परिस्थितियों की उपज है । इसलिए नए कवि शिल्प की यांत्रिक व्याख्याओं के जाल में नहीं पडे हैं । आधुनिक भावबोध, बदली हुई जटिल परिस्थितियाँ और संवेदनात्मक गहराई की खोज नये कवियों की शिल्प सजगता के प्रेरणा स्रोत हैं । अत: नए कवियों के शिल्पपरक प्रयोगों से एक बात व्यक्त हो जाती है कि शिल्प के क्षेत्र में नएपन के पीछे उनकी आधुनिक संवेदना ही है ।

काव्य रूप

आधुनिक युग में पारंपरिक काव्य रूपों को भंग करने की एक प्रवृत्ति मिलती है । नए कवियों का मानना है कि रूप प्रकार के कठोर नियमों का पालन करना ज़रूरी इसलिए नहीं क्योंकि युग की ज़रूरत इसके अनुरूप नहीं है ।

---

1. दिविक रमेश - नए कवियों के काव्य शिल्प सिद्धांत - पृ. 29-30 -प्र. 1991

अनुभति की सच्ची अभिव्यक्ति और रूप-शिल्प के प्रति सच्ची सजगता को ही नया कवि अपना आदर्श मानता है । इसलिए वह प्रत्येक रचना को एक विशिष्ट रचना के रूप में देखने के प्रबल आग्रही हैं । मुक्तिबोध तो पारंपरिक काव्य रूपों की तुलना में नई कविता को एक काव्य प्रकार की संज्ञा देना चाहते हैं । उनका कथन है "सच तो यह है कि नई कविता के भीतर कई स्वर है, कई शैलियाँ हैं, कई शिल्प हैं कई भावपद्धतियाँ हैं । नई कविता एक काव्य प्रकार का नाम है । उस काव्य प्रकार के भीतर अनेकानेक व्यक्तिगत शैलियाँ, शिल्प, रचनाविधान और जीवनदृष्टियाँ हैं ।"[1] किन्तु यह कथन काव्य रूप का कोई स्पष्ट रूप सामने नहीं लाता । तो भी इससे यह सूचना अवश्य मिलती है कि काव्य रूप के क्षेत्र में भी नया कवि मुक्ति कामी है ।

आधुनिक युग में नए-नए काव्य प्रयोग दृष्टिगत होते हैं और तदनुसार नए-नए काव्यरूप यथा काव्य-नाटक, लघु कविता, लंबी कविता, नवगीत आदि की सृष्टि हुई हैं । नए कवियों ने अपनी संवेदना को पूर्ण रूप से संवेदित करने के लिए इन काव्य रूपों का सफल प्रयोग किया है ।

काव्य नाटक

"काव्य-नाटक" आधुनिक प्रयोगात्मक लघु प्रबन्ध काव्य का नवीन रूपाकार है । यह पारंपरिक काव्य रूपों के टूटने और एक ही रचना में अनेक विधाओं के मिश्रण का प्रतिफलन है । मूलत: कविता में नाट्य-तत्व के मिश्रण से काव्य-नाटक का निर्माण होता है । धर्मवीर भारती का

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध - नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध- पृ. 12-13 - प्र.सं. 1964.

"अंधायुग", भारतभूषण अग्रवाल का "अग्निलीक", नरेश मेहता का "संशय की एक रात", कुंवर नारायण का "आत्मजयी" आदि काव्य-नाटक उल्लेखनीय हैं । ये काव्य-नाटक कविता की भांति पढे भी जाते हैं, किन्तु इनके रचयिताओं में से अनेकों का उद्देश्य मूलत: रंगमंच की दृष्टि से लिखना ही था । इन काव्य-नाटकों में काव्य की संवेदनात्मक शक्ति के साथ साथ रंगमंचीयता की शक्ति भी हैं ।

काव्य नाटक को लिखने की परंपरा किसी न किसी रूप में आधुनिक काल में, नये कवियों से पूर्व ही विद्यमान थी लेकिन काव्य-नाटक को वास्तविक रूप एवं प्रतिष्ठा नए कवियों के द्वारा ही मिलती है ।

काव्य नाटक साहित्य की एक अनन्त स्थायी एवं महत्त्वपूर्ण विधा है । कविता में अभिव्यक्ति के तीन प्रकार हैं, पहले प्रकार में कवि खुद से बात करता है । दूसरे प्रकार में कवि अपने से अलग लोगों से बातें करता है यानी संबोधित करता है । तीसरे प्रकार की काव्याभिव्यक्ति में कवि नाटक-पात्रों की सर्जना करता है जो कविता में संवाद बोलते हैं । नए कवियों ने अभिव्यक्ति के इन समस्त प्रकारों का भरसक प्रयोग किया है ।

लघु कविता

लघु कविता मुक्त काव्य की पारंपरिक शैलियों से अलग नये ढंग की ही शैली का प्रतिरूप है । "लघु कविता" संज्ञा का इस्तेमाल मूलत: मुक्त छन्द में लिखी छोटी आकारवाली कविताओं के लिए किया जाता है । यह "लघु" की बात असल में अनुभूति की प्रधानता के कारण कवि मन में

उत्पन्न होती है । यहाँ कवि का चिन्तन वर्णनात्मक या कथात्मक न होकर भावना प्रधान लघु कविता के रूप में आता है और छोटी कविता का या लघु कविता का जन्म होता है ।

लघु कविता के छोटे आकार का अर्थ यह नहीं है कि इन कविताओं में सीधी और सरल अभिव्यक्ति ही होती है और इसका महत्व क्षणिक होता है । परन्तु असली बात यह है कि छोटी-छोटी कविताओं में भी कवि अनेक उलझी संवेदनाओं को व्यक्त करता चलता है । ये कविताएँ कुछ क्षणों का चित्रण नहीं करती, बल्कि कुछ संगत और असंगत बिम्बों के माध्यम से क्षणों की परिधि को लाँघनेवाले जीवन की संश्लिष्टता को मूर्तिमत् बना देते हैं । आकार में लघु होने पर भी ये कविताएँ प्रभाव से अत्यन्त तीव्र हैं । भरतभूषण अग्रवाल के अनुसार "छोटी कविता छोटी होती हुई भी इस समष्टिगत महान का लघु अंग है ।"[1]

आकार में छोटी होने पर भी भावनाप्रधान होने के कारण इनकी महत्ता अक्षुण्ण है । बहुत कम शब्दों की सहायता से कवि बहुत कुछ कहते हैं और संवेदना को प्रखरता के साथ पाठक तक पहुँचाते हैं । इसलिए लघु कविता का महत्व सर्वाधिक है ।

लंबी कविता

महाकाव्य की या खण्डकाव्य की श्रेणी में न आनेवाले

---

1. भरतभूषण अग्रवाल - कवि की दृष्टि - पृ. 101

प्रबन्धात्मक काव्य ही लंबी कविता है । वस्तुत: प्रबन्ध काव्य की परंपरा में लंबी कविता का एक विशिष्ट प्रकार छायावाद युग में ही विकसित हो चुका था । लेकिन नयी कविता की लंबी कविताएँ शास्त्रीय धारणाओं से मुक्त हैं । असल में नए कवियों की लंबी कविताएँ निराला की "राम की शक्तिपूजा" और सुमित्रानन्दन पंत की "परिवर्तन" जैसी लंबी कविताओं के अगले चरण के रूप में विकसित है ।

लंबी कविता में भाव की दृढान्विति की प्रधानता है । लंबी कविताओं को स्वरूप, गुण आदि की दृष्टि से, दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । एक वर्ग में वे कविताएँ आती हैं जो लंबे आकार के बावजूद प्रगीत है, जैसे अज्ञेय की "असाध्यवीणा" । इसमें एक छोटी सी कथा हैं और नाटकोचित संवाद भी, किन्तु भावबोध के स्तर पर पूरी कविता अनुचिन्तनात्मक है और संरचना भी वर्तुलाकार ।[1]

दूसरे वर्ग में वे लंबी कविताएँ आती हैं जो सामाजिक और वस्तुपरक होती है यानी आत्मपरक कविता के बाहर है । श्रीकान्त वर्मा की "समाधिलेख" रघुवीर सहाय की "आत्महत्या के विरुद्ध" आदि इस कोटि की है ।[2] नाटकीय एकालाप होते हुए भी फेन्टसी का एक व्यापक प्रभावशाली पृष्ठभूमि तैयार करनेवाली लंबी कविताएँ भी है । जैसे विजयदेवनारायण साही की "अलविदा" ।[3]

---

1. डा.नामवर सिंह - कविता के नए प्रतिमान - पृ.151 - प्र.1968
2. वही - पृ.152
3. वही - पृ.156

लंबी कविता में गतिशील यथार्थपरक वस्तु की प्रधानता है । इसलिए कविता खत्म होकर भी वस्तुत: खत्म नहीं होती है । इसके विपरीत हमेशा गतिशील बनी रहती है । लंबी कविता के रचना-विधान का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है ।

गद्य कविता

गद्य की गद्यात्मकता का भरपूर प्रयोग करके लिखी गयी कविता ही गद्य कविता है । लेकिन भावात्मक तीव्रता, संवेदनात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता के कारण इसे कविता की कोटि में रखा जाता है । कविता में जीवन यथार्थ केवल भाव या बिम्ब बनकर या विचार के रूप में प्रस्तुत होते हैं । उसे सही रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता गद्य कविता में निहित है ।

नवगीत

नवगीत भी रूप प्रकारों में से एक है । नयी कविता के दौर कई नवगीत लिखते आये हैं । इनमें भी भावतीव्रता के लिए प्रमुख स्थान है । लेकिन तनावग्रस्त स्थिति के अध्ययन में नवगीत की क्षमता सन्दिग्ध ही कही जाएगी ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की शिल्प संबंधी मान्यताएँ

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पाठकों से सीधे और ज़्यादा जुडे कवि है । इसी वजह से जीवन के खरे अनुभवों ने उनकी कविता में आकार पाया है । शिल्प के प्रमुख तत्व के रूप में नए कवियों ने भाषा को स्वीकार किया है । शब्द ही काव्य की शक्ति है और शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड कृतिकार की शक्ति है । अर्थात कविता में भाव और विचारों को रूप देनेवाला तत्व है भाषा । सर्वेश्वर भी इसी विचार के पक्षधर हैं ।

सर्वेश्वर का हमेशा भाषा की सरलता की तरफ विशेष आग्रह रहा । लेकिन ऐसा एक विश्वास था कि ज़्यादा सरलता का आग्रह कविता के कवितापन को कम कर सकता है । लेकिन सर्वेश्वर इस मत से सहमत नहीं हैं । कविता में भाषा का प्रयोग के समय वे हमेशा सहज बोलचाल की भाषा को अपनाते हैं । इस भाषाई सरलता को व्यक्त करते हुए सर्वेश्वर लिखते हैं -"ऐसा काव्य जिसके लिए दुरूह, जटिल और अमूर्त की भाषा आवश्यक हो, मैं नहीं रच सकता, क्योंकि मेरी संवेदना की बनावट वैसी नहीं है । इसलिए किसी आग्रहवश ऐसा नहीं किया है, बल्कि सहज प्रकृतिवश ही मैं ने कविता में सरल भाषा को स्वीकार किया है - उसी में काव्य रचा है ।"[1] यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा की सरलता की अनिवार्य सहजता सर्वेश्वर के लिए महत्वपूर्ण है ।

सर्वेश्वर की मान्यता है कि आलोचकों ने जिस अतिसरलीकरण के मुद्दा को उठाया है, असल में वह दोष नहीं है । क्योंकि आलोचक बनी बनायी ढाँचों के आधार पर सोचते हैं, परखते हैं । जहाँ अनुभूति की सघनता का अभाव है वहाँ अतिसरलीकरण का दोष है ।[2]

सर्वेश्वर ऐसा कवि है जिनके अन्दर सामाजिक विद्रूपताओं से उपजी आक्रोश है, विद्रोह है, और इन दोनों ने मिलकर कवि की वाणी में एक प्रकार का तीखापन भर दिया है । उस तीखे अनुभव को सरल बोलचाल की भाषा में व्यक्त करने के बारे में सर्वेश्वर ने कहा -"अभी तो मेरी पूँजी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य-रचनाएँ - भाग-3 - पृ. 25 - प्र. 1992
2. वही

एक व्यापक संवेदना और ऊपरी आक्रोश है जो मेरे अन्दर की सतह को छील जाता है, और इसी अभिव्यक्ति साधारण बोलचाल की भाषा से हो जाती है ।"[1]

सर्वेश्वर ग्रामीण संस्कृति के निकट अपने को पानेवाला कवि है । ग्रामीण जीवन की सादगी और बानगी ने सर्वेश्वर के अन्दर एक प्रकार की सरलता भर दी है और यही सरलता उनकी वाणी में भी मुखर है । कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी प्रखर प्रतिबद्धता को कवि ने सहज बोलचाल की भाषा में शब्दबद्ध करके आम जनता के बीच भी अपनी कविता को प्रतिष्ठित किया है ।

कविता का रूप चाहे जो भी हो, उसमें विषय की सघनता होनी चाहिए । रूप विधान के नियमों का पालन शत-प्रतिशत सही ढंग से करने के बावजूद विषय की तीव्रता का अभाव हो तो उस कविता का प्रभाव ज़रूर कम होता है । इस दुविधा को दूर करने के लिए सर्वेश्वर रूपविधान संबंधी अनुशासन को भंग करने के लिए तैयार हैं । क्योंकि उनके अनुसार विषय की तीव्रता और पूर्ण प्रभाव रूपविधान से अधिक महत्वपूर्ण है ।[2] "तीसरा सप्तक" में वक्तव्य देते हुए सर्वेश्वर ने इस बात को यों स्पष्ट किया -" मैं विषयवस्तु को रूपविधान से अधिक महत्व देता हूँ और मानता हूँ कि संपूर्ण नयी कविता ने रूपविधान से अधिक विषय-वस्तु पर ज़ोर दिया है ।"[3] वस्तुत: कविता में विषय की तीव्रता और सघनता बहुत ज़रूरी है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ.211 - प्र.1959
2. वही - पृ.210
3. वही - पृ.210

सर्वेश्वर की कविताओं पर यह आरोप लगाया जाता है कि अनुशासित अभिव्यक्ति के अभाव के कारण गद्य की लय की अधिकता है । इतनी ही नहीं एक और आरोप यह है कि उनकी कविताओं में लय के स्थान पर आवेग ज़्यादा है । सर्वेश्वर की मान्यता है कि विषय के अनुरूप ही लय का प्रयोग किया जाता है । गद्यात्मकता से विषय की प्रभावोत्पादकता बढ़ती है तो उसका उपयोग भी कविता में करने को सर्वेश्वर तैयार है ।[1]

"प्रतीक" में "दो अगर की बत्तियाँ", "सरकंडे की गाडी" आदि कविताएँ प्रकाशित करने के बाद अज्ञेय ने 1952 में सर्वेश्वर को एक पत्र में लिखा -"देख रहा हूँ इधर कि बराबर ही आप मुक्त छन्द नहीं, नियंत्रित गद्य ही लिखते हैं ।"[2] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की मान्यता यह है कि अगर मेरी कविताएँ दूसरों के लिए कविता न भी रही तो क्या, मैं तो वही लिखता था ।[3]

कविता में गद्यात्मकता को स्वीकार करने के साथ साथ नियंत्रित गद्य में आन्तरिक लय की महत्ता को सर्वेश्वर स्वीकारते हैं । अर्थात कविता में एक आन्तरिक लय की अनिवार्यता को सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने स्वीकार किया है ।[4]

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ. 210 - प्र. 1959
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - साक्षात्कार - आजकल - सितंबर 1980 - पृ. 11
3. वही
4. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्यरचनाएँ- पृ. 26 - प्र. 1992.

गद्य की लय की महत्ता को स्वीकार करने के कारण सर्वेश्वर ने कहा -"मेरे ख्याल से लय तो कविता का एक स्वतः अर्जित गुण है । यानी हम एक खास लय को पहले पकड़े और फिर कविता लिखे ऐसा तो नहीं होता । जो भाव है उसी के अनुरूप गति या लय चुनी जाती हैं, अपने आप । इसीलिए अलग अलग लय, अलग अलग गतियाँ एक ही भाव की कविता में या अलग भाव की कविताओं में अलग अलग ढंग से आ सकती है ।"[1] यहाँ एक बात व्यक्त हो जाती है कि गद्यात्मकता में आन्तरिक लय अनिवार्य शर्त है ।

नए कवि हमेशा इस दुविधा में थे कि किस प्रकार एक उदात्त भाव को उदात्त शैली में तीव्र एवं सघन कविता के रूप में पाठकों तक पहुँचाएँ ? इसलिए कवि अनेक प्रकार के शिल्प प्रयोगों का प्रयोग करते हैं । कभी-कभी अभिधा का प्रयोग करके कविता रचते हैं । लेकिन कविता कवि की अनुभूति का व्याख्या मात्र रह जाती है । इसलिए सर्वेश्वर ने कहा "अधिक सघन और सहज रूप में काव्य को प्रस्तुत करने के लिए शैली को सहज से भिन्न और अधिक कुछ होना पड़ें तो यह गलत नहीं ।"[2] यहाँ सर्वेश्वर की शैली संबंधी मान्यता भी व्यक्त होती हैं ।

नई कविता में कथ्य-तथ्य और रचनाकार के जीवन-बोध के परिवर्तन के समान्तर रूप से शैल्पिक सीमाओं का अतिक्रमण हुआ और उसके कई आयाम विकसित हुए और कवि की अनुभूतियों ने बिम्ब के नए धरातलों को खोजने का सफल कार्य किया । मतलब यह है कि बिम्ब को

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ - पृ.27 प्र. 1992
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - आजकल - सितंबर 1980 - पृ.13

नए कवियों ने पूर्ण रूप से स्वीकार किया । क्योंकि "उनकी दृष्टि में संपूर्ण जीवन के कृत्य की अपेक्षा जीवन में एक बिम्ब की प्रस्तुति ही सर्वश्रेष्ठ है ।"[1] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भी इस विचार से सहमत हैं ।

बिम्ब के बारे में सर्वेश्वर की अपनी मान्यता है । वे कविता में तीव्र भावात्मकता को लाने के लिए बिम्ब को लेने के पक्ष में हैं । लेकिन इसका यह मतलब न निकाला जाय कि बिम्ब सर्वेश्वर के लिए कोई बैसाखी है । बल्कि रचनात्मक अंधेरे को टोहनेवाली टार्च है ।[2] बिम्ब के बारे में सर्वेश्वर का स्पष्ट विचार है -"बिम्ब मेरे लिए वांछित को पकडने की गहरी भाषिक पद्धति है जो अर्थ को गहराई से मूर्त और दीप्त करता है ।"[3] प्रतिदिन हमारे जीवन में आनेवाली चीज़ें ही कवि के प्रतीक और बिम्ब बन जाती हैं ।

सर्वेश्वर के कवि मन में शिल्प के क्षेत्र में नए नए प्रयोग करने का आग्रह कतई नहीं रहा । लेकिन उनके अनुसार कवि को साहित्य के इतिहास में ही नहीं लोकमानस में भी स्थान प्राप्त करना है । तब कवि बडा कवि बनता है । बडा कवि स्वाभाविक रूप से अच्छा कवि होता है । और सर्वेश्वर ने कहा कि "भाषा और शिल्प के साथ थोडी मशक्कत एक अच्छा कवि बनने के लिए ज़रूरी है ।"[4] अर्थात शिल्प और भाषा पर कवि को ऐसी पकड हो ताकि कविता लिखते समय उन पर अलग से ध्यान देने की आवश्यकता ही न हो । परन्तु उन्होंने कविता को शिल्पपरक प्रयोगों का अजायबघर नहीं

---

1. डा. अरुण कुमार - नई कविता कथ्य एवं विमर्श - पृ. 299 - प्र. 1988
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - आलोचना - सितंबर 1980 -पृ. 14
3. वही
4. वही

बनाया । बल्कि विषय को तीव्रता और सघनता बढाकर कविता को जनता के करीब पहुँचाने के लिए कवि को कार्यरत होना है । सर्वेश्वर के अनुसार "ऐसी कविता रची जानी चाहिए जो एक ही समय काव्य मर्मज्ञों, अर्द्धशिक्षितों और हो सकें तो अशिक्षितों को एक साथ संतुष्ट कर सकें ।"[1] इसलिए सघनता से ओतप्रोत विषय, आन्तरिक लय से युक्त पंक्तियाँ और साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग आदि की आवश्यकता है जो सर्वेश्वर की कविताओं में दर्शनीय है । क्योंकि सर्वेश्वर अपनी कविता का दायरा निरक्षरों तक फैलाना चाहते हैं ।[2]

सर्वेश्वर की कविता में लोकधर्मिता

सूरज मेरे सिर पर
पैर रखता चला जाता है,
चिड़ियाँ शोर करती
मुझमें से गुज़र जाती है
मेरी न अपनी कोई गति है, न भाषा
हवा झकझोरती है तोड़ती हैं।
टूटने से ही अब मेरी होती है पहचान ।[3]

जिस निजी पहचान की बात सर्वेश्वर ने यहाँ की है वह पहचान सर्वेश्वर की कविताओं में शुरू से आखिर तक रही है । ग्राम जीवन के अंकन में यह पहचान सबसे अधिक है । इस पहचान के पीछे लोकजीवन के प्रति सर्वेश्वर का लगाव स्पष्ट है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - स.द.स. संपूर्ण गद्यरचनाएँ - भाग-3 पृ.26 - प्र. 1992
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - साक्षात्कार - आजकल - सितंबर 1980 - पृ. 11
3. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ. 129 - प्र. 1978

सर्वेश्वर की कविता में लोकजीवन अपनी सन्निहिति का भरा पूरा एहसास प्रदान करता है । इसलिए वह कविता की संवेदना का अभिन्न अंग है । "लोक जीवन" की अंतरंगता में जिस दृष्टि को सर्वेश्वर ने सुरक्षित रखा वह जीवन के जैविक पक्षों से संबंधित है । अर्थात सर्वेश्वर की कविता में लोक मानस का भाव आरोपित नहीं बल्कि संगुंफित है ।

लोक जीवन के अनेक चित्रों के माध्यम से सर्वेश्वर की कविता व्यापक जीवन संदर्भ को छू लेता है । सर्वेश्वर का प्रतीकात्मक विन्यास लोक मानस को पूरी आत्मीयता से उभारता है । नागार्जुन की कविता में एक मोह-सा, एक अन्वेषण का रूप धारण करता है, लेकिन सर्वेश्वर उसे अपनी आत्मा के पक्ष के रूप में मानते है ।

लोकमानस से युक्त कविता कभी कभी कथा का अवलंब लेती है । लेकिन कथा का पक्ष मुख्य नहीं है । मुख्य है वह लोक संस्कृति और उससे पूरी तरह से घुल मिल गयी जीवन-स्थितियाँ जो लोक कथा के अनुरूप सरल नहीं है ।

इस श्रेणी में आनेवाली प्रथम कविता है "भुजैनियाँ का पोखरा ।" चालीस साल पहले एक पोखरे में भुजइन डूबकर मरी थी और आज यह पोखरा उसके नाम से जानी जाती है ।

उसके नाम से यह पोखरा
लगता है हर गाँव में आज भी है ।
भाड के सामने काली भूतनी सी
आज भी वह बैठी है

पसीने से चिपचिपाती देह लिए
चुप खामोश
एक एक चने से अपना भाग्य जोडती
दुखती रगें तोडती ।[1]

इस कथा के परिप्रेक्ष्य में कवि ने मक्के की रोटी और नरई के साग अगोरते बच्चों को भी दर्शाया है । नरई के साग में साँप के बच्चे होने का भय खाते वक्त उन्हें है लेकिन भूख विवश कर देती है । लेकिन जिस प्रकार समय आगे तेज़ रफ्तार से जाता हैं, उसी प्रकार परिवर्तन भी तेज़ी से आता है । अभावग्रस्तता, आर्थिक विपन्नता और शोषण दिन ब दिन बढ़ रही है और "भुजैनियाँ का पोखरा" सूख गया है ।

अब वह पोखरा सूख गया है
पास के छिछले गढों में
नरई का साग भी नहीं है
और न ऊँचाई पर पथरचट्टा
मकुनी भी नहीं मिलती ।[2]

भुजईन की लोक-कथा के माध्यम से कवि ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की दुरवस्था का आकलन किया है ।

"गाँव का सपेरा" भुजइन की भांति एक कथा नहीं है लेकिन गाँव से सीधे संबंध रखनेवाली कविता है । सपेरा वह जाति-विशेष है जिसका संबंध एक लोक-कला से है । लू शुन को गाँव का सपेरा दिखाने के लिए ले

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 46-47 - प्र. 1973
2. वही

चलता है और इस बहाने गाँव की त्रासदी से भरी ज़िन्दगी को वे उभारते हैं ।

चाँदनी, कोहरा, मछुआरे, बच्चे
नावें अँधेरे जंगल सब निस्तेज हो गये हैं
विदूषक अपना चेहरा भूल गये हैं
और उदार किसान
शहर की महिमा नहीं बखानता
वहाँ से दवा की शीशियाँ लेकर
बैठा अन्धी आँखों से घूरता रहता हैं ।[1]

आगे चलकर कवि ने तत्कालीन समाज की विरूपता, अराजकता और विडम्बना का अंकन भी किया है । गाँव के त्रासद जीवन का एक एक चित्र लू शुन के सामने पेश करके कवि ने लोक कला के पीछे निहित आँसुओं की धारा से अवगत कराया और कहते है -

जहाँ जो जितने हँसाने की क्षमता रखता है
वह भीतर उतना ही रोता रहता है ।[2]

कवि ने चालीस साल पहले जिस सपेरे को देखा था उसे कवि लू शुन को दिखाना चाहते हैं । अब संगीत के स्थान पर चीख, सुन्दर औरत के स्थान पर खौफनाक बुढिया और प्यार के स्थान पर क्रूरता है । लेकिन कवि को विश्वास है कि लू शुन का उत्तर होगा -

तुमने अपने गाँव का सपेरा दिखाकर
मुझे मुक्त किया ।[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 126-127 - प्र. 1982
2. वही - पृ. 129
3. वही - पृ. 133

लोकमानस की सफल विवृति के रूप में कुआनो नदी का भी विश्लेषण ज़रूरी है । नदी के जातीय गुण धर्म के साथ साथ "कुआनो नदी" का अपना वैशिष्ट्य भी है । कुआनो नदी का अपना भूत भी है और भविष्य भी है और वर्तमान भी । एक कल्पित नदी को केन्द्र बनाकर सर्वेश्वर द्वारा लिखी गयी कविता है "कुआनो नदी" । इस नदी के साथ अपने जीवनानुभवों को जोडने के बाद कवि ने उसे सामाजिक व राजनीतिक विसंगतियों के व्यापक संदर्भ के साथ उसे जोडते हैं । यहाँ कुआनो नदी एक कल्पना है । लेकिन एक कथा के रूप में कवि ने उसे आगे बढाया है ।

कुएँ से निकलनेवाली इस नदी में बराबर बाढ भी आती है जिस नदी को खोज निकालने की कोशिश कवि ने अपने बचपन में की थी वही नदी आज उसकी आँखों के सामने हैं ।

कुआनो नदी
अभी भी बहती रहती है रात दिन मेरे सामने
अदेखे को पाने का उत्साह कुरेदती हुई ।[1]

आगे वह बस्ती जिले के अभावग्रस्त जीवन का, शोषित जनजीवन का ब्योरा प्रस्तुत करके सामाजिक यथार्थ के समीप तक ले जाती है । कवि की स्मृतियाँ संवेदना को नए काव्यानुभवों में ढलती हैं । कुआनो नदी यद्यपि कवि की कल्पना है फिर भी वह एक जीता-जागता प्रतीक बनकर हमारे सामने आती है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 11-12

हंजूरी भी ऐसी एक कविता है जिसमें लोक कथा का आश्रय लिया गया है । ग्रामीण प्रसंग, कल्पना, मिथक आदि कथा का बाह्याकार ग्रहण करके कविता के रूप में ढलकर आते है । सर्वेश्वर की कविता में ये ग्रामीण प्रसंग अपने अलग शिल्प वैशिष्ट्य के लिए पढें और पहचाने जाएँगे ।

सर्वेश्वर की काव्य भाषा

कविता पर कवि का अपना संस्कार, अपने व्यक्तित्व की अन्यतम छाप स्वाभाविक है । कवि को कविता के लिए एकमात्र माध्यम की ज़रूरत हैं, वह है भाषा । अपने सर्जनात्मक अनुभव को संप्रेष्य बनाने में कवि की रचनात्मक क्षमता निर्भर है । कविता के संप्रेषण की समस्या भाषा के कविता बनने की पूरी प्रक्रिया से संबंधित है ।

शिल्प के प्रमुख तत्व के रूप में नए कवियों ने भाषा को स्वीकार किया है । शब्द ही काव्य की शक्ति है और शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड कृतिकार की शक्ति है । अर्थात् कविता में भाव और विचार को रूप देनेवाला तत्व है भाषा । भाषा के साथ अन्य तत्व भी अपनी-अपनी भूमिका भली भांति निभाने के बाद ही कविता की महत्ता व्यक्त होती है । मगर भाषा सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण साधन है जिसमें संप्रेषण की पूरी ताकत निहित है ।

भाषा के सामान्य प्रयोग में बात, और जिस भाषा में बात कही जा रही है, उनके बीच शाब्दिक स्तर पर साम्य होने पर भी अनुभवगत अंतर होता है । पर कविता की भाषा में यह अंतर नहीं रह जाता,

बात और भाषा में अभेद रहता है ।[1] वहाँ पर कविता पूरी तरह संवेद्य हो जाती है ।

भाषा के स्तर पर आए हुए परिवर्तन को सूचित करते हुए प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है कि - "काव्य के केन्द्र से अनुभूति को हटाकर भाषा की स्थापना, महज दृश्यान्तर नहीं, युगांतर की सूचक है, जो छायावाद और नयी कविता दृष्टि का मौलिक अंतर प्रकट करती है ।"[2]

कवि भाषा प्रयोग विधि हमारे लिए प्रत्येक युग के काव्य बोध को समझने की महत्वपूर्ण कुंजी है ।[3] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने नये भावबोध के अनुरूप अपनी काव्य भाषा का सन्धान किया है । इनके आरंभ की कविताओं में छायावादी शब्दावली व उर्दू के शब्दों की प्रचुरता थी । लेकिन शनैः शनैः सर्वेश्वर इससे मुक्ति पाकर अपने काव्यानुभवों को पूरी सघनता एवं संश्लिष्टता में व्यक्त करने लगे हैं ।

सर्वेश्वर ने तीसरा सप्तक के वक्तव्य में साधारण बोलचाल की भाषा में कविता लिखने की विवशता को स्वीकारा है ।[4] इसी कारण से उनकी कविता में ग्रामीण बोली के शब्द प्राप्त होते हैं । सर्वेश्वर के लिए कविता की भाषा परिवेशगत सत्यों को ढूँढ निकालकर पाठकों में प्रेषित करने का माध्यम है । क्योंकि परिवेश की सही जानकारी भाषा की शक्ति पर निर्भर है ।

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - कविता का पक्ष - पृ. 21
2. प्रभाकर श्रोत्रिय - कविता की तीसरी आँख - पृ. 10
3. डा. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान - पृ. 104
4. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - वक्तव्य - तीसरा सप्तक - पृ. 210

भाषा और संवेदना का अंतराल कवि को कमज़ोर बना देता है । लेकिन सर्वेश्वर की काव्य भाषा इस कथन के विपरीत है । क्योंकि उनके संपूर्ण काव्य व्यक्तित्व की शक्ति उनकी भाषा में समाहित है । उनका अनुभव संसार जितना व्यापक है भाषा का प्रयोग भी उतना ही व्यापक है ।

छायावाद की कोमल पदावली से जीवन यथार्थ के खुरदरे शब्द विन्यास तक की लंबी यात्रा में नई कविता ने भाषा के क्षेत्र में बहुत कुछ हासिल किया । नए कवि परंपरागत रूढियों को भंग करके नए प्रयोग में तत्पर दिखाई देने लगे । भाषा के क्षेत्र में भी कई प्रकार के बदलाव लक्षित होते हैं । नई कविता की परिधि में सर्वेश्वर का कृतित्व फैला है । इसी कारण से उनकी भाषा में उसका असर होना बिलकुल स्वाभाविक है ।

सर्वेश्वर की भाषा का सबसे बडा वैशिष्ट्य यह है कि उनकी कविताओं में "लोक भाषा" प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । इसलिए कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा - "सर्वेश्वर ने काव्य को व्यापकता तथा गहराई से जोडने के लिए चली आती हुई भाषा परंपरा में लोक-भाषा की शक्ति को नए रूपतंत्र से जोड दिया है । लोकजीवन से संबद्ध कवि की अन्तरमानसिकता ने काव्य संवेदना को लोक भावभूमि के अनुकूल रोज़मर्रा की भाषा से जोडकर सृजनात्मकता के स्तर पर सक्रिय किया है । वस्तुत: सर्वेश्वर की काव्य-भाषा दिन प्रतिदिन बोली जानेवाली भाषा के नित्य तत्वों को पुनर्विन्यास और काव्यसंदर्भगत रूपान्तरण की भाषा है ।"[1]

---

1. कृष्णदत्त पालीवाल - सर्वेश्वर और उनकी कविता - पृ. 50 - प्र. 1992

सर्वेश्वर ने ग्राम गीतों की तर्ज पर कुछ अत्यन्त समर्थ कविताओं का सृजन किया है । इन कविताओं में लोकगीतों की धुनों के साथ साथ लोक भाषा के शब्दों का सुन्दर एवं सार्थक प्रयोग करके अपनी काव्य भाषा को समृद्ध बनाया है । "धुपाई मारौ दुल्हन" में कवि ने शब्दों की सहायता से मर्म बेधने की कोशिश की है जैसे -

तीन चार दिन किसी तरह
घर-भर ने मिलकर काटा
दाने-दाने को मोहताज,
घूम रहे हैं बे-घर आज,
तीन रुपये इमदाद मिली है
ऊपर तीस बुलौआ ।
धुपाई मारौ दुल्हन
मारा जाई कौआ ।[1]

उसी प्रकार "चरवाहों का युगल गान" में कवि ने लोकधुन व भाषा दोनों को अपनाया ।

नदिया किनारे
हरी-हरी घास
जाओ मत, जाओ मत
यहाँ आओ पास
बया घोंसना, मोर धरौंदा, बैठो चित्र उरेहो ।
एहो ऽ एहो ऽ एहो ऽ एहो ऽ ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 404 - प्र. 1959.
2. वही - पृ. 35।

"झूले का गीत" "झाडे रे महँगुआ" और "गरीबा गीत" आदि कविताएँ इस कोटि की हैं । इन कविताओं में लोकभाषा के प्रयोग के साथ साथ संगीतात्मकता को बनाए रखने का प्रयास भी कवि ने किया है । जैसे "झूले का गीत" में सर्वेश्वर ने लिखा -

अंकुर दरसे, जियरा तरसे,
मारे पिया बदरा बन बरसे,
फुलगेंदवा चुन-चुनकर मारूँ अन्न बनूँ लहराऊँ रे ।
धरती डोलूँ अम्बर डोलूँ हाथ न उनके आऊँ रे ।[1]

एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है -

तरु तरु ने शंख बजाया
धरती ने मंगल गाया
आँधी पानी आया
चिडियों ने ढोल बजाया ।[2]

सर्वेश्वर अपनी रचनाओं में जातीय अनुभव से जिस रूप में जुडने के लिए प्रतिबद्ध लगते हैं उसकी विराटता में स्वयं अपने को समेकित कर देना जीवन का मूल प्रयोजन मानते हैं और इसके लिए जिस काव्य भाषा की तलाश करते हैं, वह भाषा भी अनुभव को समय की विराटता के साथ जोडने की सामर्थ्य रखती हैं ।[3] यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सर्वेश्वर अपनी संवेदना के अनुरूप सहज भाषा को अपनाने के पक्ष में हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 350 - प्र. 1959
2. वही - पृ. 353
3. डा. कृपाशंकर पांडे - सर्वेश्वर मुक्तिबोध और अज्ञेय - पृ. 11 - प्र. 1991

बिलकुल साधारण भाषा में चुटीला व्यंग्य करना सर्वेश्वर की विशिष्टता है । "सरकंडे की गाडी" में वे कहते हैं -

एक सरकंडे की गाडी है
जिसमें मेढ़क जुते हुए है
मच्छर शहनाइयाँ बजा रहे हैं
लाल चींटे सवार है
ओ, अरे ओ, अपना शीश झुकाओ
आजके युग की सवारी निकल रही है ।

आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य बाण छेडने के लिए भी कवि ने साधारण सी भाषा का ही प्रयोग किया है । उन्होंने लिखा -

आँख मींचकर ऐसा सोयें
खाना ले गया कुत्ता
गैर के चौके में इतरायें
जैसे कुकुरमुत्ता ।
रंग तरबूजे का
महक खरबूजे की ।[2]

हमेशा जनजीवन से जुडे रहने का भाव सर्वेश्वर की पंक्तियों में झलकती है ।

सर्वेश्वर ने अपने कथ्य के अनुरूप ही सपाट भाषा का प्रयोग कविता में किया है । सपाटबयानी कभी-कभी प्रखर प्रतिबद्धता को भी प्रस्तुत करती है । जैसे -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ.393
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - प्रतिनिधि कविताएँ - संपादक प्रयाग शुक्ल - पृ.14

संकल्प से पहले
समझने की बात है
और ज़रूरत को
साफ साफ पहचानने की ।[1]

यहाँ सपाट बयानी में सर्वेश्वर की मार्मिक भावसृष्टि दर्शनीय है । अभिव्यक्ति के विभिन्न पक्षों का सफल प्रयोग आसान काम नहीं है । सर्वेश्वर उसमें काफी माहिर दिखाई देते हैं ।

कविताओं में रोज़मर्रा की भाषा की प्रचुरता है । कभी-कभी सामयिकता को दर्शाने के लिए देशी शब्द के साथ-साथ विदेशी शब्द को भी अपनाया है । अंग्रेज़ी का प्रभाव भारतीय भाषाओं में ज़्यादा भी है । इसलिए कुछ प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सही अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है । जैसे -

तुम
जिसके बालों में बनावटी "कर्ल" नहीं हैं
जिसकी आँखों में न गहरी चटक शोखी है
थर्मामीटर के पारे सी
चुपचाप जिसमें भावनाएँ चढती उतरती है ।[2]

"जंगल का दर्द", "कुआनो नदी", "खूँटियों पर टँगे लोग" आदि संकलनों तक आते आते सर्वेश्वर की काव्य भाषा नए शब्द प्रतीकों से

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 39 - प्र. 1976
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - काठ की घंटियाँ - पृ. 300

युक्त सघन भाषा का रूप धारण कर लेती है । इनमें संकलित कविताओं के वैचारिक स्तर को यह भाषा गहराती है । सामान्य भाषा के भीतर की यह सजगता सर्वेश्वर की खासियत है ।

"कुआनो नदी" में कवि ने गरीब जिला बस्ती का एक चित्र शब्दों की सहायता से बुना है । एक अभावग्रस्त गाँव का सीधा और सच्चा चित्र इन पंक्तियों में है ।

सडक पर अधिकतर बैलगाडियाँ चलती है
कभी कभी कोई एक्का भी ।
परदा बाँधे, औरतों-बच्चों को बैठाए डगमगाता
और फिर एक साइकिल धूल से भरी हुई
भेड बकरियों के गल्ले
नए खरीदे रँगे सींगोंवाले बैल घंटियाँ बजाते
जिनकी आवाज़ धीरे धीरे दूर होती जाती है ।[1]

गरीब गाँव की अभावग्रस्तता, शोषण और बीमारियों की साक्षी है यह नदी । लेकिन सब कुछ देखकर एक निर्लिप्त भाव से वह बह रही है । नदी के तट पर रात में कत्ल होते है, वेश्याएँ ग्राहकों के साथ घूमती है, अवैध बच्चों को फेंकी जाती है लेकिन नदी निर्लिप्त भाव से बह रही है । सर्वेश्वर की भाषाई शक्ति ने इसे यों उभारा हैं ;

चमगादडों के उडने से
शाखें खडखडाती है

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 15 - प्र. 1973

और किसी अकेली चिता की
आखिरी लपटें, बड़े-बड़े दहकते
अंगारों की आँखों से देखती हैं
और ऊपर आसमान में तारे होते हैं
नीचे नदी चुपचाप बहती जाती है ।[1]

"कुआनो नदी के पार में" भी कवि ने सघन संवेद्य भाषा का ही प्रयोग किया है । देश की सरकार की नीतियों ने देश को मुर्दाघाट बना दिया है । सांस्कृतिक पतन की कीचड में हम धँस चुके हैं । सर्वेश्वर ने इस भाव को यों अंकित किया है -

मैं चाहता हूँ नदी का पाट चौडा होता
मेरी यात्रा कुछ बडी हो सकती
लेकिन तट के कीचड में नाव
धीरे धीरे आकर फँस जाती है ।[2]

इस वहशी दुनिया में किसी को किसी से कोई ताल्लुक नहीं है । भूख तथा बेकारी के खिलाफ बगावत करनेवाली पीढी हाथ में पत्थर लिए स्कूल के फाटक पर मरी पडी है । लोकतंत्र लाठी तथा गोली की भाषा पर खडा है । कोई भी विद्रोही ज़िन्दा नहीं छोडा गया । और कवि "क्यों" का प्रयोग कई बार करके हमारे सामने अनेक प्रश्नों को छोड देते हैं -

क्यों ये थोथे सिद्धांतों के नीचे
दबकर मर गए
यदि बच रहे

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 19 - प्र. 1973
2. वही - पृ. 23

तो फूली लाश की तरह उबर गए ?
क्यों हर हाथ टूटा है ?
क्यों हर पैर कटा है ?
क्यों हर चेहरा मोम का है ?
क्यों हर दिमाग कूड़े से पटा है ?
क्यों यहाँ कोई ज़िन्दा नहीं है ?[1]

"कुआनो नदी - खतरे का निशान" में आते आते सर्वेश्वर का विचार आग और शोलों में तब्दील हो जाते हैं । उसके साथ ही साथ भाषा में भी एक विद्रोह की भावना स्पष्ट दिखाई देने लगती है । संकरी, नीली शांत नदी में जनक्रांति का पानी चढ रहा है । साथ ही साथ भाषा भी प्रखर होती दिखाई देती है । जनक्रांति को पूर्ण रूप से आत्मसात करने की क्षमता सर्वेश्वर की काव्यभाषा में है । वे लिखते हैं -

घर के पिछवाडे बंधी
गाँधीजी की बकरी मिमियाती है
और कहीं गोली चलने की आवाज़ आती है ।[2]

समसामयिक परिवेश से उपजी संकट ने नई संवेदना के लिए सही तथा भरोसे की भाषा को खोजने का प्रयास हमेशा किया है । सर्वेश्वर उस संवेदनात्मक भाषा को अपने कलम में उतारने को सक्षम निकले । "कुआनो नदी" की भाषा ग्रामीण समस्याओं को बौद्धिक ढंग से समझने समझाने के लिए

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 28
2. वही - पृ. 34

छटपटाने लगती है । इस छटपटाहट की भाषा ने भीतर का सच्चा तल्ख अनुभव बाहर शब्द मूर्त कर दिया है ।[1]

कवि के लिए शब्द का एक सही मायना है उसे कवि ने यों व्यक्त किया है ।

शब्द चिनगारियाँ है
आँसुओं में भीगती
फिर दूसरे ही क्षण
लपट बनकर कौंधती
फिर लौ बनकर
थिर हो जातीं ।[2]

हर शब्द कविता का प्राण है । कविता की देह है और संवेदनात्मक क्षमता से भरपूर हैं । अर्थात् सर्वेश्वर की काव्यभाषा संप्रेषणीयता के सभी सोपानों को सफलता के साथ पार करनेवाली भाषा है ।

सर्वेश्वर की भाषा-शक्ति का सही दृष्टान्त है उनकी एक ही शीर्षक में लिखी कविताएँ । एक ही शीर्षक के नीचे बदलते सामाजिक परिवेश को, विभिन्न मानसिकता को पिरोया गया है । "खूँटियों पर टँगे लोग" संग्रह की खास विशेषता भी यही है । "जूता", "प्रौढ शिक्षा", "सुरों के सहारे", "नदी से", आदि इस संकलन की कविताएँ हैं ।

---

1. डा. कृष्णदत्त पालीवाल - सर्वेश्वर और उनकी कविता - पृ. 64
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 52 - प्र. 1982

"जूता" शीर्षक में चार कविताएँ हैं । जगह-जगह फटा जूतों की तरह फटे आदमी पहली कविता में आता है । दूसरी में नया जूता आता है और तीसरे में जूते न पहननेवालों को कवि भले आदमी के दर्ज से अभिहित करते हैं । जूता-4 में कवि जूते के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं । चारों कविताएँ आकार में छोटी है । जैसे -

तारकोल और बजरी से सना
सडक पर पड़ा है
एक ऐंठा, दुमडा, बेडौल
जूता ।
मैं उन पैरों के बारे में
सोचता हूँ
जिनकी इसने रक्षा की है
और
श्रद्धा से नत हो जाता हूँ ।[1]

"नदी से" नाम से तीन कविताएँ हैं । तीनों कविताएँ संक्षिप्त हैं मगर एक व्यापक काव्यानुभव को प्रेषित करने में ये लघु कविताएँ सक्षम हैं ।

"प्रौढ शिक्षा" और "सुरों के सहारे" नाम से दो कविताएँ हैं । अपने अनुभवों को पूरी संश्लिष्टता के साथ एक शीर्षक में समेटकर प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है ।

"जंगल का दर्द" संग्रह की "भेडिया", "धूल", "कुत्ता", "काला तेंदुआ," "वसंत राग", "देह की संगीत", "टीन पर ओले" आदि इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 35

"भेड़िया - 1" में कवि कहता है -

भेड़िये की आँखें सुर्ख हैं ।
उसे तब तक धूरो
जब तक तुम्हारी आँखें
सुर्ख न जाएँ ।[1]

क्योंकि डरकर, भागने से कोई फायदा नहीं है । वह इसलिए कि भागने के पश्चात् अपने भीतर ही उसे पाने की बेबसी का सामना करना पड़ेगा । आगे "भेड़िया-2" में कवि ने इन गुर्राते भेड़ियों के सामने मशाल लेकर जाने का आह्वान करते हैं क्योंकि भेड़िया मशाल नहीं जला सकता ।[2] वे कहते हैं -

अब तुम मशाल उठा
भेड़िये के करीब जाओ
भेड़िया भागेंगे ।[3]

आगे "भेड़िया-3" में कवि चेतावनी देते हैं कि एक दिन अचानक भीड में से कोई भेड़िया बन जाएगा और उसका वंश बढने लगेगा । क्योंकि यह एक प्रवाह है । हमारे अंतर मौजूद वह जानवर कभी भी बाहर आ सकता है । इसलिए सर्वेश्वर कहते हैं -

इतिहास के जंगल में
हर बार भेड़िया माँद से निकाला जाएगा
आदमी साहस से, एक होकर
मशाल लिए खड़ा होगा ।[4]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 22
2. वही - पृ. 23
3. वही
4. वही - पृ. 24

एक ही शब्द "भेड़िये" के माध्यम से कवि ने जीवन यथार्थ की व्यापकता को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । यहाँ उनकी भाषा की सपाटता के बीच गहराई दृष्टिगत होती है ।

सर्वेश्वर की कविता की भाषिक संरचना में सूत्रों की भरमार भी है -

कुछ बचाने के लिए
कुछ खोना पड़ता है
जो खोने से डरता है
वह बचा नहीं सकता ।[1]

उसी प्रकार

फैसले पर न पहुँचा हुआ आदमी
फैसले पर पहुँचे हुए आदमी से
ज़्यादा खतरनाक होता है ।[2]

सूत्रों का अस्तित्व जीवन यथार्थ से होने से सूत्रबद्धता कविता की भाषा को कमज़ोर नहीं बनाता बल्कि एक ऊर्जा प्रदान करती हैं ।

प्रतीकों व बिम्बों का बृहत्तर संसार और जनजीवन की अभिव्यक्ति

"बिम्ब काव्य भाषा की तीसरी आँख है, जो मात्र गोचर ही नहीं किसी अगोचर - तत्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व (कालिदास) - रूप को, एक ओर कारयित्री और दूसरी ओर भावयित्री भाषा के लिए उपलब्ध

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कुआनो नदी - पृ. 34
2. वही - पृ. 36

करती है । वह सिर्फ कैमरे की आँख नहीं है जो दृश्य की अनुपस्थिति के बावजूद दृश्य की अनुकृति प्रस्तुत करें, वह काव्य भाषा की आँख है ।[1] इस कथन से यह भाव निकलता है कि बिम्ब असल में एक शब्द-चित्र प्रस्तुत करता है जो पूर्ण रूप से संवेद्य है ।

बिम्ब और प्रतीक का प्रयोग लेखकीय प्रतिभा को उजागर करता है । लेकिन कभी भी वह कविता का पर्याय नहीं है । बिम्ब और प्रतीक हमेशा कविता के सार्थक उपादान हो सकते हैं जहाँ वे कविता की शक्ति बढाते हैं ।

नई कविता के प्रमुख कवियों की अनुभूतियों पर पश्चिम के काव्यान्दोलनों का प्रभाव दिखाई देता है । इसी कारण से नए कवियों ने अपनी अनुभूतियों एवं विचारों को प्रस्तुत करने के लिए बिम्ब और प्रतीक का सहारा लिया है । नए कवियों ने छायावादी अतीन्द्रिय बिम्बों की अपेक्षा यथार्थ को अपने बिम्बों का आधार बनाया । और उन्होंने सौंदर्ययुक्त जीवन के वैविध्य और जटिलता और वैचारिक संघर्ष से युक्त सशक्त बिम्बों और प्रतीकों की सृष्टि की । एक प्रकार की संश्लिष्ट, संक्षिप्त और प्रखर बिम्बधर्मिता नयी कविता की विशेषता है । कविता की शक्ति के लिए, प्रामाणिकता और काव्यात्मकता को बनाए रखने के लिए, रचनात्मकता के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसे बिम्ब वांछनीय हैं ।

---

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - कविता की तीसरी आँख - पृ. 24

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना उस बिन्दु के कवि है जहाँ पर प्रयोगवाद का वृत्त नई कविता के वृत्त का स्पर्श करते हुए उसमें समाहित होता हुआ दिखाई देता है ।[1] इसलिए सर्वेश्वर के शैल्पिक प्रयोगों में नयापन है और नई कविता के भाव के बिलकुल अनुकूल भी है ।

बिम्ब के क्षेत्र में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने एक विशिष्ट प्रयोग किया है । परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने "जंगल का दर्द" में एक पशुलोक की बिम्ब जाति का सीधा सामना किया है ।[2] उन्होंने पशु लोक के जीवित, हरकत और तनावभरे आक्रामक बिम्बों का निर्माण किया है । "भेडिया", "कुत्ता", "काला तेंदुआ" आदि इसका उदाहरण है ।

"भेड़िया" में सर्वेश्वर ने आज के आदमी की लडाई की ओर ही इशारा किया है । "भेडिया" प्रत्येक आदमी के अन्दर बसी जानवराना अन्दाज़ है । इसलिए कवि अपनी पहचान को भेडिये की पहचान में खोजने के लिए बेचैन है ।

वन्य जीवियों की आक्रामकता कोमलता पर सीधी चोट करती है । लेकिन इन पशु लोग के बिम्बों के सहारे कवि ने आदमी की लडाई को, उसके तनाव को, दूसरों द्वारा उस पर होनेवाले तनाव को बखूबी व्यक्त किया है । जैसे -

चट्टानों पर झिंझोड रहा है अपना शिकार
काला तेंदुआ

---

1. जगदीश गुप्त - नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ - पृ. 27।
2. परमानन्द श्रीवास्तव - समकालीन कविता का व्याकरण - पृ. 53

चट्टानें, चट्टानें नहीं रहीं
तेंदुओं में बदल गयी हैं
एक तेंदुआ
सारे जंगल को
काले तेंदुए में बदल रहा है ।[1]

यह तेंदुआ वर्तमान की चेतना का भयाक्रान्त पाशविक रूप है जो समूची कविता के आधार में फैला हुआ है ।

"जंगल" एक विशेष अभिप्राय पद है जो सर्वेश्वर की कविताओं में बार बार आता है । "जंगल की याद मुझे मत दिलाओ" शीर्षक कविता में कवि ने संकेत दिया है कि किस तरह मूल सामाजिक जीवन से आदमी विच्छिन्न होता है और व्यवस्था को चलाने का निर्जीव पुर्जा होकर रह जाता है । उसकी संपूर्णता नष्ट हो जाती है व्यक्तित्व खो देता है और अपने जडों से नफरत करने लगता है । इस टीस को "जंगल" के माध्यम से कवि ने यों प्रस्तुत किया हैं -

जंगल की याद
अब उन कुल्हाडियों की याद रह गयी है
जो मुझ पर चली थीं
उन आरों की जिन्होंने
मेरे टुकडे टुकडे किये थे
मेरी संपूर्णता मुझसे छीन ली थी ।[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 46 - प्र. 1976
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 13 - प्र. 1982

प्रतीक और बिम्ब काव्य भाषा की सृजनात्मक प्रक्रिया के अनिवार्य किन्तु विशिष्ट तत्व हैं । सर्वेश्वर की कविता में साँप, कोट, मोजा, स्वेटर, दस्ताने, गाबरैले, सब ऐसे प्रतीक हैं जिनका प्रयोग करके कवि ने पाठकों के सामने विचारों का संपूर्ण जीवित संसार को ही प्रस्तुत किया है । इन प्रतीकों की सहायता से कवि ने एक समृद्ध "बिम्ब" प्रक्रिया को विकसित किया है । मानव जीवन की निरर्थकता को "कोट" नामक कविता में कवि ने ऐसे व्यक्त किया -

क्या वह भी
मेरी तरह
किसी खूँटी पर टँगे टँगे थक गया था ?
कोट था ?[1]

यहाँ "कोट था" के प्रयोग कवि के मन में उपजी समस्त विचारों एवं अनुभूतियों का खुलासा है । इस प्रकार "मोजा" यहाँ एक जोता जागता आम इनसान का प्रतीक है जो सिर्फ यही करता है -

मैं उन पैरों के साथ हूँ
उन्हें गर्म रखूँ
और जूते के कठोर स्पर्श को
खुद झेल लूँ
उन पैरों तक न आने दूँ ।[2]

ठीक इसी प्रकार है -

मानता हूँ
जहाँ पसलियाँ अडाऊँगा
वहाँ ये मेरे साथ होंगे

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 23 - प्र. 1982
2. वही - पृ. 28

लेकिन जहाँ मात खाऊँगा
वहाँ इन धडकनों के साथ कौन होगा ।[1]

यह एक सच है कि आपात्कालीन स्थिति ने व्यवस्था को क्रूर बना दिया और व्यवस्था के ज़रिये लोगों की जीभें छीन ली थी । जीभ कटे आदमी भी व्यथा और विचार की घुटन में बहुत कुछ कर सकता है । एक बिम्बमाला का प्रणयन करके इस स्थिति को कवि ने यों दर्शाया है ।

एक बच्चा नक्शे में रंग भरता है
तुम जानते हो वह कहाँ गया ?
एक बच्चा नक्शा फाड देता है
तुम जानते हो वह कहाँ पहुँचा
यदि तुम जानते होते
तो चुप नहीं बैठते
इस तरह ।[2]

यहाँ कविता के बिम्ब का महत्व उसके संवेदन का कारण है जिसमें नई पीढी की एक आक्रोशी मुद्रा बहुत बडे फलक पर उतरती है ।

सर्वेश्वर की काव्य भाषा एक हद तक बिम्बप्रधान काव्य भाषा है । एक ही विभिन्न भावों को प्रस्फुटित करने में सक्षम है । "वसंत" के अनेक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं । लेकिन देखने की बात यह है कि वसंत का कोई एक चित्र दूसरे से नहीं मिलता है । इसमें सर्वेश्वर की भाषा की विशिष्टता ही दिखाई देती है ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - खूँटियों पर टँगे लोग - पृ. 25 - प्र. 1982
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 18 - प्र. 1976

कभी-कभी वसंत 'राग' है जैसे -

उद्यान में
उड रही हैं तितलियाँ
वसंत के प्रेम पत्र ।[1]

कभी-कभी कवि के लिए दिल खोलने का माध्यम है और कवि पत्र लिखते भी है -

मैं जानता हूँ
उस भाव की मृत्यु मेरी मृत्यु है
पर अब मैं जहाँ उसकी लाश पडी होगी
वहाँ लौटकर भी नहीं जाऊँगा
और तुम भी अच्छी तरह समझ लो
उस पर फूल नहीं चढाओगे ।[2]

इस प्रकार वसंत के अनेकों चित्र ऊब या एकरसता उत्पन्न न करके नए एहसास के साथ प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार वसंत एक ऐसा प्रतीक है जिसके अनेक बिम्ब है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक विद्रोही रचनाकार है । इसीलिए क्रांति का आह्वान भी वे भली भांति करते हैं । यह क्रांति उनकी कविताओं का मुख्य स्वर भी है । "मशाल" उनकी कविताओं में क्रांति का प्रतीक है ।

भेडिया गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ
उसमें और तुम में

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ.86
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - कविताएँ-2 - पृ.165

यही बुनियादी फर्क है
भेड़िया मशाल नहीं जला सकता ।[1]

इसी प्रकार आग भी, क्रांति का ही प्रतीक है जिसे कवि जन-जन के बीच देखना चाहते हैं ।

वह आग मेरे करीब आती जा रही है
कभी मैं किसानों के चिलमों में
अंगारे की तरह दमकने की कामना करता था,
मज़दूरों की बीड़ियों में सुलगने के
ख्वाब देखता था ।
उनके चूल्हों में धधकना चाहता था ।[2]

शब्दों की यह आग मज़दूरों की ओर मुखातिब हैं अधनंगे, अधभूखों का समूह में इकट्ठा होकर बढ़ना ऐसा होता है जैसे जंगल की आग किसी गिरिशिखर की ओर बढ़ जाती है और उसे ध्वस्त करके ही दम पाती है । इस आग की लपट और उसकी अलग अलग चिनगारियाँ सर्वेश्वर की वाणी में यों मुखरित है -

मैं ने देखा, स्लेट पर चलती
उनकी उँगलियाँ
लौ में बदल रही हैं
और पूरा शब्द लिखते ही
उनका हाथ मशाल में बदल गया है ।[3]

"लाल सायकिल" भी क्रांति का प्रतीक है । बच्चा युवा पीढ़ी का और सायकिल की घंटी का बजना विप्लव का आह्वान । इन प्रतीकों को कवि ने बड़ी विदग्धता के साथ पिरोया हैं । जैसे -

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 23
2. वही - पृ. 16
3. वही - पृ. 13

"रात भर एक सायकिल
कँटीले बाड़े से टिकी
अकेली खड़ी रही ।"[1]

और आगे ऐसे होता है कि

"सुबह एक बच्चा कहीं से आया
और ओस में भीगी ठंडी घंटी
बजाने लगा ।"[2]

क्रांति की आग को फैलाना सर्वेश्वर अपना कवि कर्म मानते हैं । इसलिए वे अपनी कविता के द्वारा युवा पीढ़ी में यह चेतना जगाना चाहते हैं । उनकी यही चाह इस प्रकार के प्रतीकों के प्रयोग के पीछे वर्तमान है । इन में सर्वेश्वर के कवि-कर्म की बारीकियों को थाहने की क्षमता हैं ।

सर्वेश्वर ने कुछ ऐसी कविताएँ भी लिखी है जो हवा, पत्ती, तितली, सर्प, मुस्कान आदि मनमानी प्रतीकों से भरपूर है । कवि की धमनियों में जो प्रेम का भूकंप फूटता है उसे कवि छिपाने के लिए तैयार नहीं है । प्रतीकों के माध्यम से वे व्यक्त करते हैं -

तुम्हारा तन
एक हरी भरी झाड़ी है
जिससे मैं मेमने सा

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 38
2. वही

अपना तन रगडता हूँ ।
एक सलोनापन
अलग होने के बाद भी
हमारे बीच बहुत देर तक
लहराता रहता हैं ।[1]

संक्षेप में सर्वेश्वर के प्रतीक और बिम्ब राजनीति एवं समाज पर बहस के लिए पाठक को आमंत्रित करते हैं । इस प्रकार ये दोनों वैचारिकता के समृद्ध स्तर का संकेत देते हैं । युगीन यथार्थ और उसकी चेतना में आए परिवर्तन से नया साक्षात्कार कराते हैं ।

सर्वेश्वर शिल्प के संकेतों के प्रयोगकर्ता नहीं है । वे शिल्प के संकेतों की उर्वरता के अन्वेषक हैं । शिल्प इसलिए उनकी कविता में हावी नहीं हैं । वे कविता की संश्लिष्टता को बढाने के लिए यदा-कदा प्रत्यक्ष होते रहते हैं ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ.83

उपसंहार

तीसरा सप्तक के प्रकाशन तक आते आते हिन्दी कविता में नई कविता पूरी तरह से स्वीकृत पठित और चर्चित हो जाती है । यह सन् 1959 की बात है । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का हिन्दी कविता में पदार्पण तीसरा सप्तक के एक कवि के रूप में होता है । नई कविता के बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक कवियों में सर्वेश्वर इसलिए स्थान प्राप्त कर सकें कि उनकी सृजनशीलता में सदैव नई ज़मीन तलाशने की रचनात्मक ऊर्जा विद्यमान थी तथा उनकी कविताओं का सीधा सरोकार जनजीवन और उसके यथार्थ से था । इसलिए हिन्दी कविता की जनवादी धारा के कवि के रूप में भी सर्वेश्वर की भूमिका पहचानी गयी है ।

यद्यपि कवि के रूप में सर्वेश्वर विख्यात है फिर भी साहित्य के अन्य विधाओं में भी उनकी रचनात्मकता सामान्य नहीं है । सबसे पहले उनका नाटककार व्यक्तित्व विशेष उल्लेखनीय है । "लडाई", "बकरी", "अब गरीबी हटाओ" आदि नाटकों ने हिन्दी में जनवादी नाटकों के लिए पर्याप्त प्रश्रय दिया है । अलावा इसके बाल नाटक के क्षेत्र में भी उनकी भूमिका रही है । "काठ की घंटियाँ" शीर्षक संकलन में संकलित कहानियों तथा उनके "सोया हुआ जल", "पागल कुत्तों का मसीहा" और उडे हुए रंग "तूने चौखटे" आदि उपन्यासों में उनका कथाकार व्यक्तित्व भी उभरकर आता है । कवि पक्ष के औनत्य के कारण संभवत: उनका कथा साहित्य अचर्चित ही रह गया है । नाटक तथा कथा साहित्य के अलावा उनकी समसामयिक विषयों पर लिखी गयी टिप्पणियाँ यद्यपि विषय और दृष्टि के संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण है फिर भी उन पर किसी का ध्यान गया ही नहीं है । साहित्य संस्कृति, राजनीति, समाजशास्त्र जैसे विषयों पर लिखी टिप्पणियों में सर्वेश्वर का

विचारक पक्ष प्रखर है । उनकी ये बेबाक टिप्पणियाँ स्वातंत्र्योत्तर समाज को तथा सांस्कृतिक मूल्यों में आए परिवर्तन को समझने में सहायक है । वस्तुत: इनका अलग अध्ययन ही वांछित है ।

जैसे उपरोक्त सूचित है, सर्वेश्वर का कवि पक्ष अपने विस्तार में बहुत कुछ को समेटनेवाला है । आधुनिकता के दौर में भी यूरोपीय आधुनिकता से मुक्त रहकर सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में भारतीय जीवन के यथार्थ को उतारने का, तथा उसके अन्तर्तत्वों के अनगिनत परतों को काव्य वस्तु बनाने का कार्य किया है । प्रारंभिक कविताओं की हताशा तथा अस्मिता की खोज में भले ही अस्तित्ववाद का प्रभाव अनुभव किया जा सकता है लेकिन सर्वेश्वर के कविता प्रकरण में वह एक सीमित दौर ही रहा है । शीघ्र ही वे उससे उभरकर आगे बढ सके हैं । इसे समयोचित विकास या परिवर्तन कहना ठीक नहीं होगा बल्कि उसे कवि का आन्तरिक एवं बहिरंग विकास कहा जा सकता है । कविता का रचनात्मक ऊर्ध्वमुखी विकास जो एक कवि के संदर्भ में उतना महत्वपूर्ण नहीं है जबकि कविता के संदर्भ में सर्दव महत्वपूर्ण है । इसमें हिन्दी कविता के विकास के इतिहास को और संवेदनात्मक विकास को अनुभव किया जा सकता है ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता वस्तुत: हिन्दी कविता के दो विशेष कालखंड में रचित है । पहला है नई कविता का दौर और दूसरा है समकालीन कविता का दौर । यह मात्र रचना काल की व्याप्ति से संबंधित नहीं है अगर ऐसा होता तो सभी सप्तकीय कवि एवं सप्तकेतर कवि समकालीन कविता में भी विचारणीय हो सकते थे। जबकि स्थिति

यह है कि नई कविता के दौर के बहुत ही कम कवि समकालीन कविता में चर्चित हुए । और उन इने गिने कवियों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का स्थान है । यद्यपि उनका देहान्त 1983 में हुआ फिर भी समकालीन कविता को दिशा देने में पूर्ववर्ती पीढी की भूमिका में सर्वेश्वर की भी अर्हता है । इसका कारण यह है कि वे मात्र यथातथ्यता के कवि नहीं है । यथार्थ में निहित तमाम जटिलताओं को पहचानने की शक्ति रखने के कारण उनकी कविता की एक तीसरी आँख भविष्य की ओर दृष्टि लगाई हुई है । इस अर्थ में ही वे समकालीन कविता के पुरोधा कवियों में स्थान ग्रहण करते हैं ।

जब हम सर्वेश्वर के रचना-व्यक्तित्व और उनकी कविताओं को आमने सामने रखकर देखते हैं तो पहला तथ्य यह उभरकर आता है कि सर्वेश्वर की जीवन दृष्टि अत्यन्त सहज और पारदर्शी है । यह सहजता और पारदर्शिता उनकी कविताओं में भी दर्शनीय है । इसने उनकी कविता को प्रासंगिक भी बनाया है । अर्थात् वे यथार्थ के समस्त आयामों के पक्षधर कवि है । उनके रचना व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष जो कविता के बहाने इस तरह प्रकट होता है कि वे जीवन की मुख्यधारा से विलगित पूरे समाज के पक्षधर भी है । उनके प्रति सहानुभूति दर्शाना या उनके बहाने अपनी शाब्दिक मुखरता को व्यक्त करना या अपनी कविता मात्र को इस विद्रोही तेवर से मुखर करना उनका उद्देश्य नहीं रहा है । बचपन से जिए हुए जीवन को और अपने आसपास देखे हुए जीवन को सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में आभ्यन्तरीकृत किया है । समाज का कोई भी पिछडापन या मूल्यों की गिरावट उनके लिए पचनेवाली बातें नहीं है । इस विरोधाभास को उन्होंने कई तरह से अपनी कविताओं में स्वर दिया है । उनकी कविताओं का प्रस्तुत विश्लेषण भी उस ढंग से ही किया गया है ।

ग्रामीण संस्कृति में पलने के कारण सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में पर्याप्त मात्रा में प्रकृति का उपयोग किया है । लेकिन उनकी कविता में प्रकृति सौंदर्यद्योतक विषयवस्तु नहीं है । प्रकृति और मनुष्य, प्रकृति और सामाजिक स्थितियाँ, प्रकृति और राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा प्रकृति और सांस्कृतिक अवस्थाएँ आदि कई सन्दर्भों को उनकी कविताओं में देखा जा सकता है । इसलिए सर्वेश्वर की कविता कतई प्रकृति का कोई मोहक रूप प्रस्तुत नहीं करती । वह प्रकृति कविता नहीं है । इस संदर्भ में सवाल यही उठता है कि उन्होंने प्रकृति का इतना प्रचुर उपयोग क्यों किया है ? जबकि उनके मन में प्रकृति के प्रति कोई विशेष आकर्षण भी नहीं है । यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रकृति का सहवास ही उनकी कविता से मिलता है जो प्रारंभ से रहा है । वस्तुत: सर्वेश्वर की कविता में प्रकृति का एकदम भिन्नार्थी संदर्भ अभिव्यंजित हुआ है । जिसे लोकमानस की व्यंजना के रूप में देखना उचित लगता है ।

प्रकृति वर्णन और लोकमानस की इच्छित दृष्टि में काफी अन्तर है । प्रकृति वर्णन में प्रकृति ही विषय है । उसके कई प्रकार के रूप कविता में अंकित हो सकते है। ऐसे वर्णन या तो आकर्षण के कारण और सौंदर्यवर्णन की बलवती इच्छा के कारण होता है । ऐसी कविताओं में प्रकृति के कई बिम्ब और प्रतीक प्राप्त होते रहते हैं । जिससे कविता अपनी रचनात्मकता में सघन भी हो जाती है । कभी कभी ऐसा भी होता है कि अपने भावों और विषयों के आलंबन या उद्दीपन के हेतु प्रकृति का सहारा लिया जाता है । ऐसी कविताएँ प्रकृति-कविता की कोटि में आती हैं ।

सर्वेश्वर ने अपनी कविताओं में बदलते सामाजिक परिदृश्यों और राजनीति की बदलती परिस्थितियों के बीच मनुष्य के जीवन यथार्थ को ही आँकने का कार्य किया है । इन पक्षों को सहज ढंग से प्रस्तुत करना उनकी कविता की अनिवार्यता थी । कविता के प्रकरणों को सहज बनाने के हेतु उन्हें जीवन के ऐसे पक्षों का अनावरण करना पडा है जहाँ हम पूरी तरह से अपने में निमग्न महसूस कर सके । तब प्रकृति का साहचर्य भी अनिवार्य हो गया है । पोखरों, तालाबों, झाडियों, जंगलों, भेडियों और न जाने कितने प्रकृति संदर्भ उनमें आ जाते हैं । इससे विशेष प्रकार की लोकदृष्टि की निष्पत्ति हो जाती है । लेकिन यह अवस्था भी अनारोपित है । यह भी ध्यातव्य है कि जो कवि मिट्टी की निजी स्थितियों से परिचित है वही लोकदृष्टि से कविता की सृजनात्मकता को सघन बना सकता है । सर्वेश्वर ऐसे कवियों में एक है । इसलिए उनकी कविता में प्रकृति का एकदम भिन्नार्थी संदर्भ विवृत होता प्राप्त होता है जिसे उनका लोकमानस पक्ष भी कहा जा सकता है । सर्वेश्वर की कविताओं की लोक-चेतना अपने आप में एक बृहत्तर विषय है ।

हिन्दी कविता में जनवादी कविता की धारा कभी विलुप्त नहीं हुई है । संभव है कि इसी युग में वह बलवती, स्रोतस्विनी रही है और कभी वह क्षीणकाय । लेकिन वह कभी सूख नहीं गयी । मध्यकाल से लेकर आज तक कविता में यह धारा निरंतर बहती चली आ रही हैं । प्रगतिवादी कविता के दौर में इस धारा को साम्यवादी दर्शन का बल मिला यह जीवन के कई आयामों से जुडकर शक्तिशाली धारा के रूप में कविता की ज़मीन को उर्वर करती रही है । नयी कविता में यह धारा पुनः बलवती हो गयी । लेकिन राजनीतिक दर्शन के पूर्वनिश्चित प्रभाव से मुक्त हो गयी । अर्थात नई कविता का एक प्रबल पक्ष जनवादिता का है । पर सब कहीं वह मार्क्सवादी दर्शन के

सहारे खड़ी नहीं है । जनवादिता को और अधिक मानवीय और विस्तृत बनाने का कार्य ही नए कवियों ने किया है ।

जहाँ तक सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता का सवाल है कि उनकी कविता में मार्क्सवाद का सीधा प्रभाव है । लेकिन उन्होंने भी इस प्रभाव को प्रभाव में परिवर्तित नहीं किया है । अतः सर्वेश्वर के जनवादी स्वर व्यापक मानवीय संदर्भ में मुखरित है । परन्तु ऐसी कविताएँ भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है जिनमें मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में जनवादिता को मुखरता मिली है । सर्वेश्वर की कविता-दृष्टि सशक्त और सभी प्रकार की संश्लिष्टताओं को आत्मसात् करने में सक्षम होने के कारण प्रभाववादी दृष्टि से उनकी कविता अनुप्राणित नहीं हुई है ।

जनवादी प्रवृत्ति सर्वेश्वर की कविताओं की अहं प्रवृत्ति है । इसका कारण यही है कि उन्होंने जिस यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहा है वह साधारण से साधारण जीवन संबंधी है । वहाँ जीवन की चमक-दमक नहीं है । जिन निम्न मध्यवर्गीय जीवन के मामूली से लगनेवाले, पर जीवन के गंभीर चिन्ताओं को ही उन्होंने अपनी कविता में प्रस्तुत किया है । जहाँ उन्हें अस्तव्यस्तता दिखाई देती है, जहाँ उन्हें जीवन में कई अयाचित संदर्भ मिलते है, जहाँ पूरी तरह से मूल्य तिरस्कार की स्थिति मिलते हैं, वहाँ उनका स्वर तीक्ष्ण होने लगता है । इस प्रकार उनकी जनवादी उन्मुखता अपने सही तेवर में प्रकट होती है ।

इसी प्रवृत्ति का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि वह सदैव प्रतिपक्षधर्मी भी हुआ करती है । प्रतिपक्षधर्मी होने के लिए कविता को प्रतिबद्ध भी होना पडता है । सर्वेश्वर को इसके प्रति पूरी आस्था थी । अत: यह कहा जा सकता है कि सर्वेश्वर की जनवादिता उनकी प्रतिबद्धता की सही अभिव्यंजना है जिसमें यथार्थ को उसकी बहुआयामिता में पहचानने का प्रयास मिलता है । जीवन स्थितियाँ इसलिए उनकी कविता में सहजता सहित अनावृत भी दीखती हैं ।

राजनीति और कविता का संबंध चाहे तो हम पुराने युग के साथ जोडकर भी देख सकते हैं । लेकिन आधुनिक युग में कविता और राजनीति का संबंध काफी सुदृढ हो गया है । दो प्रकार की कविताएँ इस संदर्भ में लिखी जा रही है जिन्हें हम राजनीतिक कविताओं के अन्तर्गत रख सकते हैं । एक वह है जहाँ हमारा सामाजिक यथार्थ एक सही राजनीतिक अवस्था की माँग करता है । ऐसी कविताओं में राजनीति का कोई दर्शन प्रकट नहीं है । पर राजनीतिक विषय प्रकट होता ही है । यह दर असल सामाजिक आकाँक्षाओं की राजनीतिक परिणति है । अपनी वैकल्पिक स्थानों के माध्यम से कवि अपनी राजनीतिक दृष्टि का एहसास कविता द्वारा करता है । दूसरी श्रेणी की कविता में व्यावहारिक राजनीतिक मोर्चे के कवियों के कारण राजनीति का एक गलत रूप एकदम अनिश्चित प्रकार से हमारे सामने प्रकट होते हैं जो विरोध करने लायक है । अर्थात् गलत या अनिश्चित कार्य-कलापों के विरोध में लिखी गयी कविताएँ भी इधर खूब लिखी गयी है । ऐसी कविताओं में प्राय: मनुष्य को भूमिका मुख्य हो जाती है क्योंकि गलत या विध्वंसक राजनीति का बोझा उठानेवाला यही मनुष्य है । सर्वेश्वर ने ऐसी बहुत कविताएँ लिखी हैं । इन कविताओं में वास्तव में जर्जरित राजनीतिक

प्रयोगों और उसकी वास्तविकताओं को बेनकाब करने का प्रयत्न अधिक सशक्त है । इसलिए ऐसी कविताओं के मूल में उनकी राजनीति संबंधी वैकल्पिक स्थिति का भी मुख्य रूप हमें मिलता है ।

सर्वेश्वर, विरोध को सामान्य अर्थ में प्रकट करनेवाले कवि नहीं है । विरोध उनका एक सशक्त विकल्प है । उसमें उनकी राजनीति स्पष्ट झलकती भी है । राजनीति की विध्वंसात्मक रवैयों को उन्होंने क्रांति चेतना के सामना करके ही बतायी है । इसलिए उनके लिए क्रांति कविता की आवश्यकता न होकर एक राजनीतिक ज़रूरत है जो उनकी कविता में सही मात्रा में ध्वनित है ।

सर्वेश्वर की कविताएँ सिर्फ क्रांति के आह्वान भर देनेवाली नहीं है । जनता के पक्ष में बोलनेवाली कविता क्रांति का पक्ष लेती ही है । जनता के पक्ष में बोलनेवाली कविता अन्ततः विपक्ष की भी होती है । हिन्दी में इस मात्रा में क्रांति भावना अन्यत्र उपलब्ध भी नहीं है । सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनकी कविताओं का यह पत्र आरोपित भी नज़र नहीं आता है । उनकी कविता में क्रांति की बात नहीं बल्कि क्रांति का अनुभव करवाया गया है ।१

अपनी कविताओं में सर्वेश्वर जितने सहज और बोधगम्य है उसी मात्रा में उनका शिल्प भी सहज और बोधगम्य है । प्रयोग के लिए प्रयोगवादी बात सर्वेश्वर की कविताई में उपलब्ध नहीं है । लेकिन कविता में प्रयोग की अनिवार्यता को उन्होंने महसूस भी किया है । जैसे गद्य का

मामूली प्रयोग हो, कविता श्रृंखलाओं की बात हो या कविता के अंतरंग में नाटकीय मुद्राओं को प्रक्षेपित करने का ढंग हो । लेकिन उनकी विशेषता यही है कि इन प्रयोगपरकताओं को भी कविता की सहज परिणतियों के रूप में ही चित्रित किया हैं ।

सर्वेश्वर की काव्यभाषा का प्रसंग भी प्रमुख है । उनकी भाषा अपनी सपाटता में बहुत कुछ समेटनेवाली है । गद्यात्मक प्रवृत्तियों का भरपूर कलात्मक प्रयोग उन्होंने कविता में किया है । इसलिए बोलचाल के प्रसंग से लेकर सामान्य संवादात्मकता तक या वक्तव्य बाजी से लेकर कथात्मकता तक, लोककथाओं के प्रसंग से लेकर लोकधुन की लयात्मकता तक उनकी काव्यभाषा का विस्तार है । सर्वेश्वर ने अपनी काव्यभाषा को सहजता और सर्जनात्मकता के बीच में पहचानने का कार्य किया है ।

नयी कविता से लेकर समकालीन कविता तक सर्वेश्वर की कविता-यात्रा व्याप्त है । नयी कविता के बहुत से कवि अपने दौर में ही अवर्धित रह गए । कुछ कवि अपनी रचनात्मकता का परिचय दे सके और वे समकालीन कविता के अग्रज कवि भी माने जाने लगे । उनमें सर्वेश्वर का स्थान है । इसका कारण यही है कि सर्वेश्वर के पास जो काव्यानुभव है वह इतना बृहत्तर है जिसे उन्होंने सदैव गंभीर चिन्ताओं के साथ जोडा है । इसलिए तत्कालीन अनुभवों को कौंध के रूप में उनकी कविताएँ विन्यसित नहीं हुई हैं । कई दूरगामी संकेतों से युक्त होने के कारण अपनी साधारणता में भी उनमें असाधारणता देखने को मिलता है । कविता का वास्तव में यही दायित्व भी है । आज की जटिल परिस्थिति में कोई भी कविता तनावहीन नहीं हो

सकती है । तनावहीन कविता आज की होकर भी आज की नहीं हो सकती हैं । समकालीनता को इसी रूप में व्याख्यायित किया गया है । अतः समकालीन होने के लिए जिस तनावग्रस्तता की आवश्यकता है वह सर्वेश्वर की कविता में निहित है ।

सामाजिक विसंगतियों के बीच शब्दों के प्रयोग से रचित संस्कृति कार्य के रूप में कविता की भूमिका का महत्व अन्य कार्य कलापों की तुलना में सामान्य प्रतीत हो सकता है । लेकिन कविता के शब्द अनमोल होते हैं और वे समय-समय पर हमारी संवेदना को, हमारे मूल्य बोध को हमारी सांस्कृतिक दृष्टि को, एवं हमारे सामाजिक दायित्वबोध को नवीकृत करते हैं । सर्वेश्वर के शब्दों ने सदैव एक बृहत्तर समाज को नवीकृत किया है और वे आज भी नवीकृत करते आ रहे हैं । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका इसी बात पर निर्भर हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रंथ

1. कविताएँ - 1 - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन
8-नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1978.

2. काठ की घंटियाँ - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
आलोपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता - 27
प्र.सं. 1959.

3. कुआनो नदी - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन
8-नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1973.

4. खूँटियों पर टँगे लोग - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन
8-नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1982.

5. जंगल का दर्द - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1976.

6. तीसरा सप्तक - सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता - 27
प्र.सं. 1959.

7. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना- - संपादक-प्रयाग शुक्ल
प्रतिनिधि कविताएँ राजकमल प्रकाशन
1-बी नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1984.

8. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना - किताब घर
संपूर्ण गद्य रचनाएँ भाग-1 24/4866, अंसारी रोड
भाग-2 दरियागंज
भाग-3 नई दिल्ली - 110002
भाग-4 प्र.सं. 1992.

सन्दर्भ ग्रन्थ (मूल)

9. अकाल में सारस - केदारनाथ सिंह
राजकमल प्रकाशन
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1988.

10. अरण्या - नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन
15/ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
प्र.सं. 1985.

11. अस्मिता - संपादक-डा. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
डा. जितेन्द्रनाथ पाठक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी
तृ.सं. 1992.

12. उत्सवा - नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन
15/ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
प्र.सं. 1979.

13. कविश्री अज्ञेय - संपादक-सियारामशरण गुप्त
साहित्य सदन
चिरगाँव - झांसी
प्र.सं. सन् 1957.

14. चाँद का मुँह टेढ़ा है - गजानन माधव मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता
प्र.सं. 1965.

15. चिन्तामणि - आ. रामचन्द्र शुक्लजी
इंडियन प्रेस {पब्लिकेशन्स} प्रा. लि.
इलाहाबाद

16. तुमने कहा था - नागार्जुन
वाणी प्रकाशन
69 - एफ कमलानगर
दिल्ली - 110007
प्र.सं. 1980.

17. दूसरा सप्तक – सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता - 27
द्वितीय संस्करण - 1970.

18. बावरा अहेरी – अज्ञेय
सरस्वती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र.सं. 1954.

19. बोलने दो चीड को – नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन
15/ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
प्र.सं. 1993.

20. युगधारा – नागार्जुन
यात्री प्रकाशन
सी-3/169
यमुना विहार
दिल्ली - 110053
प्र.सं. 1953.

21. साखी – विजयदेव नारायण साही
सातवाहन पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली - 110005
प्र.सं. 1983.

22. कामायनी – जयशंकर प्रसाद
डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा. लि.)
2713 - कूचा चेलान
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रकाशन वर्ष - 1988.

23. सन्धिनी - महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन
15/ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
संस्करण वर्ष - 1993.

24. रूपाम्बरा - सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दुर्गाकुण्ड रोड
वाराणसी
प्र. सं. 1960.

आलोचना ग्रन्थ

25. अंग्रेज़ी हिन्दी नई कविता की प्रवृत्तियाँ - डा. राजेन्द्र मिश्र
सामयिक प्रकाशन
3543, जटवाडा
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1990.

26. इनसानियत की नसीहत - डा. शमीम अलियार
सूर्यभारती प्रकाशन
नई सडक
दिल्ली - 110006
प्र. सं. 1998.

27. कविता के साक्षात्कार - मलयज
संभावना प्रकाशन
रेवती कुंज
हापुड - 245101
प्र. सं. 1979.

28. कविता का गल्प - अशोक वाजपेयी
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38 अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1997.

29. कालयात्री है कविता - प्रभाकर श्रोत्रिय
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1993.

30. काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका - कमल कुमार
प्रेम प्रकाशन मंदिर
3012 बल्ली माशन
दिल्ली - 110006
प्र.सं. 1988.

31. कविता के नए प्रतिमान - नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन
8-नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1968.

32. कविता की मुक्ति - नन्दकिशोर नवल
वाणी प्रकाशन
61-एफ, कमला नगर
दिल्ली - 7
प्र.सं. 1980.

33. कविता की लोकप्रकृति - डा. जीवन सिंह
अनामिका प्रकाशन
नया बैरहना
इलाहाबाद - 3
प्र. सं. 1990.

34. कविता का जनपद - सं. अशोक वाजपेयी
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1992.

35. कविता का पक्ष - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद
प्र. सं. 1994.

36. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दरियागंज
नई दिल्ली - 2
प्र. सं. 1990.

37. कविता कालयात्रिक - डा. लक्ष्मी नारायण
प्रवीण प्रकाशन
नई दिल्ली - 30
प्र. सं. 1988.

38. नयी कविता की भूमिका - डा. प्रेमशंकर
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
23-दरियागंज
दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1988.

39. नाटककार सर्वेश्वर - धीरेन्द्र शुक्ल
शांति प्रकाशन
इलाहाबाद

40. नयी कविता का आत्मसंघर्ष- गजानन माधव मुक्तिबोध
तथा अन्य निबन्ध विश्वभारती प्रकाशन
नागपुर
प्र.सं. 1964.

41. नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - परमानन्द श्रीवास्तव
नीलाभ प्रकाशन
खुसरोबाग रोड
इलाहाबाद
प्र.सं. 1968.

42. नई कविताएँ - एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
15/ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद
प्र.सं. 1990.

43. नयी कविता रचना प्रक्रिया- डा.ओम प्रकाश अवस्थी
पुस्तक संस्थान
नेहरू नगर
कानपुरा - 2
प्र.सं. 1972.

44. नई कविता के बाद - डा.ओम प्रकाश अवस्थी
पुस्तक संस्थान
नेहरू नगर, कानपुर - 2
प्र.सं. 1974.

45. तारसप्तक के कवियों की समाज चेतना – डा. राजेन्द्र प्रसाद
वाणी प्रकाशन
2- अंसारी रोड
दरियागंज, दिल्ली
प्र. सं. 1987.

46. नये साहित्य का सौंदर्य-शास्त्र – गजानन माधव मुक्तिबोध
राधाकृष्ण प्रकाशन
2-अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली
प्र. सं. 1971.

47. नयी कविता की चेतना – डा. जगदीश कुमार
सन्मार्ग प्रकाशन
16 यू-बी बँग्लो रोड
दिल्ली - 110007
प्र. सं. 1972.

48. नयी कविता की पहचान – डा. राजेन्द्र मिश्र
वाणी प्रकाशन
61-एफ कमलानगर
दिल्ली - 110007
प्र. सं. 1980.

49. नयी कविता में वैयक्तिक चेतना – डा. अवधनारायण त्रिपाठी
जवाहर पुस्तकालय
मथुरा
प्र. सं. 1979.

50. नयी कविता : स्वरूप एवं समस्याएँ – जगदीश गुप्त
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नेताजी सुभाष मार्ग
3620/21
नई दिल्ली - 6.

51. नये कवि : एक अध्ययन भाग-4 - डा. संतोषकुमार तिवारी
भारतीय ग्रन्थ निकेतन
27।3 - कूचा चेलान
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
प्रकाशन वर्ष - 1991.

52. नयी कविता आलोचना और कला - प्रो. विमल कुमार
भारती भवन
पटना - 4
प्र. सं. 1963.

53. चिन्तन मुद्रा - विष्णुकान्त शास्त्री
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली
प्र. सं. 1977.

54. नयी कविता - कथ्य एवं विमर्श - डा. अरुण कुमार
चित्रलेखा प्रकाशन
170, अलोपी बाग
इलाहाबाद - 211006
प्र. सं. 1988.

55. नयी कविता - पुरातन सूत्र - मानसिंह वर्मा
राधा पब्लिकेशन्स
4378/4 बी अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002.
प्र. सं. 1991.

56. नयी कविता का वैचारिक आधार - सुधीश पचौरी
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1987.

57. नयी कविता का इतिहास - डा. बैजनाथ सिंहल
संजय प्रकाशन
वजीरपुर (अशोक विहार)
दिल्ली - 52
प्र.सं. 1977.

58. नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना - डा. देवराज पथिक
कादम्बरी प्रकाशन
ए-55/1, सुदर्शन पार्क
नई दिल्ली - 110015
प्र.सं. 1985.

59. नयी कविता - सीमाएँ और संभावनाएँ - गिरिजाकुमार माथुर
अक्षर प्रकाशन (प्रा.लि.)
अंसारी रोड, दरियागंज
दिल्ली - 6
प्र.सं. 1966.

60. नयी कविता का आत्मसंघर्ष- मुक्तिबोध
राजकमल प्रकाशन
8-नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली
प्र.सं. 1983.

61. नयी कविता में मूल्य बोध - शशि सहगल
अभिनव प्रकाशन
21-ए, दरियागंज
दिल्ली - 2
प्र.सं. 1976.

62. नयी कविता - संस्कार और शिल्प - रामशंकर मिश्र
साथी प्रकाशन
सागर, मध्यप्रदेश
प्र.सं. 1964.

63. नयी कविता - नई आलोचना और कला - कुमार विमल
भारती भवन
पटना
प्र.सं. 1963.

64. नई कविता की भाषा - काव्यशास्त्रीय संदर्भ में - हरिप्रसाद पांडे
बोहरा प्रकाशन
चौडा रास्ता
जयपुर
प्र.सं. 1989.

65. नये कवियों के काव्य शिल्प सिद्धांत - दिविक रमेश
पराग प्रकाशन
कर्ण गली
विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली - 32
प्र.सं. 1991.

66. पच्चीस उपन्यास - नाटकीयता की निष्कर्ष पर - ओम प्रकाश शर्मा (प्रकाश)
पाण्डुलिपि प्रकाशन
ई-11/5 कृष्णनगर
दिल्ली - 11005.
प्र.सं. 1987.

67. शब्द और मनुष्य - परमानन्द श्रीवास्तव
राजकमल प्रकाशन
1/बी नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र.सं. 1988.

68. विवेक के रंग - संपादक-देवीशंकर अवस्थी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं. 1995.

69. समकालीन कविता – डा. ए. अरविन्दाधन
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38 अंसारी मार्ग
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002.

70. समकालीन कविता का व्याकरण – परमानन्द श्रीवास्तव
शुभदा प्रकाशन
क्यू-22 - नवीन शाहदरा
दिल्ली - 110032
प्र. सं. 1980.

71. समकालीन हिन्दी कविता – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
राजकमल प्रकाशन
नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1982.

72. समकालीन काव्य की दिशाएँ – डा. वेदप्रकाश अमिताभ
मधुवन प्रकाशन
21 - द्वारकापुरी
मथुरा (30 प्र.)
प्र. सं. 1992.

73. सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय – डा. कृपाशंकर पाण्डेय
शिवम प्रकाशन
राजरूपपुर - इलाहाबाद
प्र. सं. 1991.

74. सर्वेश्वर और उनकी कविता– डा. कृष्णदत्त पालीवाल
लिपि प्रकाशन
1-अंसारी रोड
नई दिल्ली - 2
प्र. सं. 1992.

75. सर्वेश्वर और उनका काव्य - डा. कालीचरण स्नेही
आराधना ब्रदर्स
124/152 श्री गोविन्दनगर
कानपुर
प्र. सं. 1997.

76. समकालीन प्रतिनिधि कवि - डा. अनन्तकीर्ति तिवारी
साहित्य रत्नालय
गिलिस बाज़ार
कानपुर
प्र. सं. 1995.

77. साठोत्तरी हिन्दी कविता- नरेन्द्र सिंह
में जनवादी चेतना वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1990.

78. समकालीन कविता : संप्रेषण- वीरेन्द्र सिंह
विचार और आत्मकथ्य पंचशील प्रकाशन
जयपुर - 302003
प्र. सं. 1987.

79. साठोत्तर हिन्दी काव्य - डा. एस गंभीर
में राजनीतिक चेतना विद्या विहार
106/154 गांधी नगर
कानपुर - 208012
प्र. सं. 1992.

80. समसामयिक हिन्दी कविता- गोविन्द रजनीश
विविध परिदृश्य देवनगर प्रकाशन
जयपुर - 3

81. हिन्दी उपन्यासों में प्रतीकात्मक शिल्प - डा. सुशील शर्मा
सिद्धराम पब्लिकेशन्स
शिवाजी पार्क (1/7403)
दिल्ली
प्र. सं. 1982.

82. हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प - माधुरी खोसला
विजयन्त प्रकाशन
पंजाबी बाग
नई दिल्ली - 26
प्र. सं. 1973.

83. छायावाद से नई कविता - डा. रमेशचन्द्र शर्मा
भारत प्रकाशन मंदिर
अलीगढ
प्र. सं. 1980.

84. सौंदर्य शास्त्र और आधुनिक हिन्दी कविता - डा. प्रेमलता बाफना
नटराज पब्लिशिंग हाउस
होली मोहल्ला
करनाल - 132001
प्र. सं. 1983.

इतिहास ग्रन्थ

85. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह
लोकभारती प्रकाशन
15/ए महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
परिवर्धित सं. 1986.

86. हिन्दी साहित्य का इतिहास - श्री शरण/डा. अलोक कुमार रस्तोगी
प्रेम प्रकाशन मंदिर
बल्ली रामन
नई दिल्ली - 110006.
प्र. सं. 1988.

87. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन
महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद
पुनर्मुद्रण - 1993.

88. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डा. शिवकुमार शर्मा
अशोक प्रकाशन
नई सडक
नई दिल्ली - 6
चौदहवीं सं. 1994.

पत्रिकाएँ
---

89. आजकल - संपादक-द्रोणवीर कोहली
सितम्बर 1980.

90. दस्तावेज़ - संपादक-विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
अप्रैल - जून 1996.